क्षाके आधार

(श्रीमाताजीके कुछ वचन)

श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी

शिक्षाके आधार

(श्रीमाताजीके कुछ वचन)

श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी

सूची

It is good to read
a Divine Teaching.
It is better to learn it.
The best is to live it.

भागवत शिक्षाको पढ़ना अच्छा है।
उसे सीखना ज्यादा अच्छा है।
उसे जीवनमें उतारना सबसे अच्छा है।

— श्रीमां
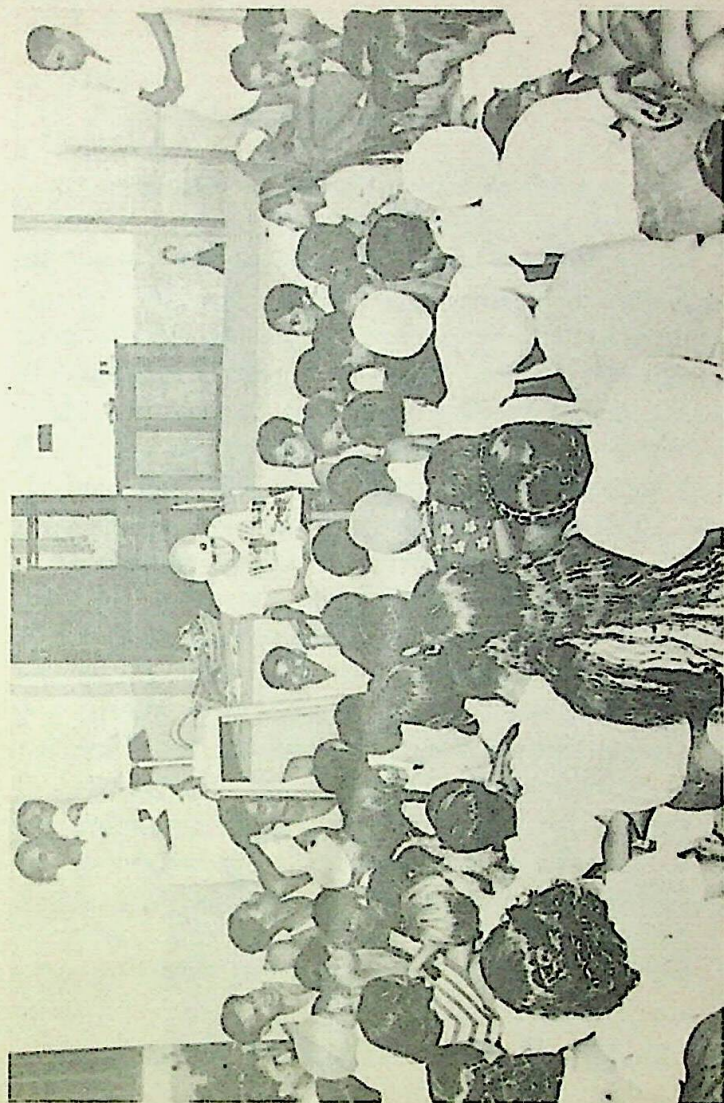
बच्चोंके साथ माताजी

भूमिका

शिक्षा — एक विहंगम दृष्टि

जब हम शिक्षाकी बात करते हैं तो उसके कई रूप हमारे सामने आते हैं। ओनामासिधं, दो एकन दो, दो दूनी चारसे लेकर बड़े-बड़े विद्यालयों और विश्वविद्यालयोंके चित्र हमारी आंखोंके आगे घूम जाते हैं। कहीं खेल-कूदको भी शिक्षाका अंग माना जाता है, यद्यपि गौण अंग, और कहीं "पढ़ोगे-लिखोगे तो होगे नवाब और खेलोगे-कूदोगे तो होगे गंवार" की सीख दी जाती है। एक बात-में प्रायः सभी सहमत हैं: शिक्षा जीवनके शुरूके वर्षोंमें ही दी जाती है और अमुक समयतक चलती है; लेकिन माताजी सारे जीवनको ही शिक्षा मानती हैं। उनका आश्रम एक बड़ा शिक्षणालय है जिसमें स्त्री-पुरुष, सभी अपने-अपने ढंगकी शिक्षा पा रहे हैं।

हमारे जीवनमें चार तत्त्वोंकी प्रधानता है: शरीर, प्राण, मन और चैत्य। इनमेंसे हर एकको अपने-अपने ढंगकी शिक्षाकी जरूरत होती है। कोई भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। बच्चोंको खेल-कूद बहुत पसंद होता है इसलिये हम शारीरिक शिक्षाको ही सबसे पहले लेते हैं। माताजीने इसपर बहुत बल दिया है। बरसोंतक वे इसके लिये रोज कई-कई घंटे खर्च किया करती थीं। उनका कहना है कि शारीरिक शिक्षाके लिये कभी यह नहीं कहा जा सकता कि इसे शुरू करनेका समय नहीं आया और कभी यह नहीं कहा जा सकता कि अब इससे क्या होगा। हां, हर स्तरपर रूप अलग हो सकते हैं। शारीरिक शिक्षामें तीन बातें जरूरी हैं: १ —शरीरकी क्रियाओं-को नियंत्रित रखना, २ — सभी अंगोंको और उनकी क्रियाओंको पूरी तरहसे विकसित करना, ३ — शरीरमें जो कमजोरी या विकार हो उसे दूर करना।

अगर शुरूसे ही सावधानी बरती जाय तो बच्चे बहुत सारी

मुसीबतोंसे बच जाते हैं। कई बड़े-बड़े विकार जो बड़ी आयुमें बहुत कष्ट देते हैं बचपनकी बुरी आदतोंसे शुरू होते हैं, ठीक तरह उठना-बैठना, चलना आदि प्रारंभिक शारीरिक शिक्षणके अंग हैं। शरीरको अपनी स्वाभाविक स्थितिमें मालूम होता है कि उसके लिये क्या ठीक है और क्या गलत। लेकिन हम उसको सहज रूपमें फैसला करने ही नहीं देते।

माताजीके अनुसार प्राणकी शिक्षाके दो मुख्य तत्त्व हैं: पहला, इंद्रियोंका विकास; दूसरा, अपने स्वभावको जानना और बदलना। यूं तो हम पांच ही ज्ञानेंद्रियोंसे परिचित हैं पर जाननेवालोंका कहना है कि इनकी संख्या सातसे बारहतक हो सकती है। कुछ लोग हाथसे छूकर इंचके हजारवें हिस्सेतककी मोटाईका फर्क बता सकते हैं; आंखसे देखकर सैकड़ों फुट ऊंची दीवारकी ठीक-ठीक ऊंचाई बता सकते हैं। हाथमें उठाकर रत्तीभर भारका फर्क बता सकते हैं। हमारी परिचित ज्ञानेंद्रियां भी ठीक प्रशिक्षण पायं तो बहुत कुछ कर सकती हैं। रेड इंडियन जमीनपर कान लगाकर जान लेते थे कि शत्रु सेना कितनी दूर है। कुछ लोगोंमें ये चीज़ें जन्मजात होती हैं और कुछ प्रशिक्षणके द्वारा प्राप्त कर लेते हैं।

मन अपने उचित और अनुचित विचार शरीरपर लादता है। प्राण भी कहता है: "मुझे यह पसंद नहीं, वह मैं नहीं चाहता," और बेचारे शरीरको उनकी सहनी पड़ती है। छोटी अवस्थासे ही बच्चेको यह सिखाना चाहिये कि वह शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये खाता है, उसे भूखके अनुसार खाना चाहिये और ठूंसनेकी प्रवृत्तिसे बचना चाहिये। कई बच्चोंमें यह आदत होती है कि अगर वे घर-पर किसीसे नाराज हो जायं तो झट भूख-हड़ताल कर देंगे या अगर किसी कारण बहुत प्रसन्न हो गये तो भूखको देखे बगैर खूब खाते रहेंगे। कई ऐसे भी होते हैं जो क्रोधमें या दुःखमें अधिक भकोस लेते हैं। उन्हें सिखाना चाहिये कि भोजनका उपयोग पुरस्कार या दंडके रूपमें नहीं करना चाहिये।

बचपनमें ही सफाईका ख्याल अच्छी आदतके रूपमें पैदा हो जाना चाहिये, बीमारी या दंडके भयसे नहीं। माताजी बताती हैं कि हम जिस चीजसे डरते हैं उसके लिये अपने दरवाजे खोल देते हैं। बच्चेको यह बताना चाहिये कि स्वस्थ शरीर बहुत बड़ी निधि है। ध्यान आकर्षित करने या सहानुभूति पानेके लिये बीमारीका बहाना करना या उसे पोसना बिलकुल गलत है; दुर्बलता कोमलता या नजाकतताका नहीं, हीनताका लक्षण है।

जैसे ही बालक अपने अंगोंका उपयोग करने लगे वैसे ही उसे थोड़ी-बहुत कसरतकी आदत डलवानी चाहिये, ताकि जोड़ोंमें सख्ती न आने पाये। खुली हवामें कसरत करना पचासों दवाएं खानेसे कहीं अधिक अच्छा है।

केवल कसरत काफी नहीं है, साथ ही आराम भी होना चाहिये। इस बातका ध्यान रखो कि कोई भी काम करते हुए तुम्हारी स्नायुओंमें तनाव न आये। बचपनमें कम-से-कम आठ घंटेकी नींद जरूरी है। आधी रातसे पहलेकी नींद पिछली रातकी नींदसे ज्यादा अच्छी होती है। बहुत देरतक जागना और उत्तेजनामें ही सो जाना कभी हितकर नहीं होता। घरका काम भी इस तरह न करो कि वह भार बन जाय। कामके लिये बच्चोंमें हीनताका भाव न होना चाहिये, लेकिन यह भी जरूरी है कि वह उनके लिये हौआ न बने।

स्वस्थ रखनेके साथ-साथ शरीरको सुन्दर भी बनाना चाहिये, लेकिन यह कपड़े-लत्तोंका या प्रसाधनका सौंदर्य न हो। शरीरके अंगोंमें संतुलन हो, सामंजस्य हो, उसकी त्रुटियोंको दूर किया जाय तो स्वाभाविक सौंदर्य निखर आता है। इन चीजोंको जितनी छोटी आयुमें शुरू किया जाय उतना ही अच्छा। बड़े होकर ज्यादा परिश्रम और ज्यादा धीरजकी जरूरत होती है।

अब आयी प्राणकी बारी। प्राण वह तत्त्व है जहांसे हमारी इच्छाएं, हमारे भाव, संवेदन, गुस्सा, घृणा, प्रेम, बहादुरी, डर आदि

निकलते हैं। अधिकतर कविता, चित्रकला, संगीत, नाच आदिकी प्रेरणा भी यहींसे आती है। माताजी कहती हैं कि प्राणकी शिक्षा सबसे ज्यादा जरूरी है लेकिन लोगोंने इसकी ओर सबसे कम ध्यान दिया है। बहुत-से लोग यह मानते हैं कि सुख पाना ही जीवनका लक्ष्य है — "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिवेत्।" वे चाहे जिस मूल्यपर इस समय सुख पाना चाहते हैं, भले उसके लिये पीछे रोना क्यों न पड़े। लेकिन यह सच्ची बात नहीं है। दुनिया जिसे सुख मानती है वह तो पशुओंका-सा जीवन है, उससे कुछ ज्यादा जटिल। साधारण जीवनका लक्ष्य है कर्तव्य-पालन और जरा ऊंचे जीवनका लक्ष्य है अपने अंदरकी चेतनाको जगाना और सत्य-को प्राप्त करना।

दूसरी बड़ी भूल यह है कि लोग समझते हैं कि मानव स्वभावको बदलना असंभव है। यह कुत्तेकी दुम बारह वर्ष गाड़नेपर भी टेढ़ी ही रहेगी, लेकिन यह भी गलत है। सचाईके साथ प्रयास किया जाय तो स्वभाव जरूर बदल सकता है। माताजी कहती हैं कि जैसे दुनियामें प्रकाश और छाया साथ-साथ रहते हैं उसी तरह आदमीके स्वभावमें परस्पर विरोधी चीजें साथ-साथ रहती हैं, कभी एक सामने आती है, कभी दूसरी। हम देखते ही हैं कि कुछ लोग एक दिशामें बहुत उदार होते हैं और, दूसरी दिशामें बहुत कृपण। ऐसे बहादुरोंकी बातें सुनी हैं जो बिल्लीसे डरते थे। जीवन हमारे अंधेरे पक्षको सामने लाकर उसे बदलनेका अवसर देता है। साधा-रण आदमी जिधर प्रकृति हांक दे उधर ही चल पड़ता है, लेकिन अगर प्राणको भली-भांति शिक्षा दी जाय तो वह बहुत सुन्दर बन सकता है।

स्वभाव बदलनेके लिये साधारणतः त्याग, निग्रह, कठोर तप आदिका प्रयोग किया जाता है। इनसे तुरंत लाभ भले दीख जाय, पर त्रुटिका निराकरण नहीं होता। चीज नीचे धंस जाती है, फिर असावधानीके समय पत्थर फोड़कर निकलती है। हम

पुरानी कथाओंमें देखते हैं कि बड़े-बड़े ऋषि-मुनि काम और क्रोधके आवेगोंके वश हो जाते थे। इसका कारण निग्रह ही होता है। हमें निग्रह नहीं, शोधन करना चाहिये। इसके लिये कई तरीके हैं, कोई समझ-बूझके द्वारा अपने अंदर यह इच्छा जगाता है कि उसके अंदर अमुक प्रकारके आवेग न उठने पायं, कोई प्रतिष्ठा और स्व-मानके विचारद्वारा अपने-आपको छायाके क्षेत्रसे दूर रखता है। सबसे अच्छी तरकीब तो यही है कि अपने अंदर विद्यमान चैत्य पुरुषकी सहायतासे प्राणको शुद्ध किया जाय। ललित कलाएं प्राणके प्रशिक्षणके लिये उपयोगी होती हैं, पर उसकी शुद्धि तो चैत्य ही कर सकता है।

जैसे-जैसे बच्चेकी समझ बढ़ती जाय उसे यह भी सिखाना चाहिये कि वह सुन्दर, असुन्दर और कुरूपमें भेद कर सके, सामंजस्य लानेवाली चीजोंका स्वागत करे और उलटी चीजोंको दूर रखे। बच्चेके अंदर सुरुचि पैदा की जाय और यह आदत डाली जाय कि वह काम-चलाऊ वृत्तिसे कभी संतुष्ट न हो, हर काम ठीक जैसा होना चाहिये वैसा ही करे। सच्ची सौंदर्य-वृत्ति हमें बहुत-सी गंदी, कुत्सित वस्तुओंसे बचाती है, क्रूरता या अशिष्टता आदिको पास नहीं फटकने देती, उसके अंदरसे कुलीनता झलकती है।

अब आती है मानसिक शिक्षा। आजकल जिसे शिक्षा कहा जाता है उसे हम उसके अच्छे-से-अच्छे रूपमें भी लें तो भी वह मानसिक कसरतसे बढ़कर कुछ नहीं है। जानकारियोंका ढेर लगा देना या तोता-रटंत करना शिक्षा नहीं है। माताजी कहती हैं कि मनकी शिक्षामें पांच तत्त्व मुख्य होने चाहिये : १ — एकाग्रताकी क्षमता; २ — फैलाव, विस्तार और समृद्धिकी क्षमता; ३ — विचारोंको किसी विचारके इर्द-गिर्द इकट्ठा कर सकना; ४ — विचारोंका संयम, तुम जो सोचना चाहते हो वही सोचो; ५ — मनको शांत और नीरव करनेकी क्षमता, ताकि तुम ऊपरसे आनेवाली प्रेरणाको भली-भांति पकड़ सको।

यहां इन सबकी भली-भांति व्याख्या करना तो संभव नहीं है, पर मोटे रूपमें इन्हें समझनेकी कोशिश कर सकते हैं। साधारणतः बच्चेके अंदर, शायद अधिकतर लोगोंके अंदर, विचार तितलियोंकी तरह इधर-उधर उड़ते फिरते हैं और उन्हें एकाग्र करना बहुत कठिन होता है, लेकिन हर एकमें, कम या ज्यादा, यह क्षमता होती जरूर है। हम देखते हैं, बच्चेका किसी बातमें मन लग जाय तो वह वहसे उठनेसे इनकार कर देता है। तुम्हें अपने मनको किसी-न-किसी तरीकेसे एकाग्र करना सीखना चाहिये। अगर तुम मनको एकाग्र कर सको तो फिर कोई भी विषय तुम्हारे लिये कठिन नहीं रहता। तुम हर समय, हर स्थितिमें कुछ-न-कुछ सीख सकते हो। इसके लिये तुम्हारे अंदर वारीकीसे देखनेकी क्षमता होनी चाहिये। तथ्य रटनेकी ऐसी आवश्यकता नहीं है। उन्हें समझ सकना ज्यादा जरूरी है। अगर तुम्हारे अंदर समझनेकी क्षमता है तो हर विषय रोचक हो सकता है, तुम जीवनमें हर कदमपर कुछ-न-कुछ सोच सकते हो। विभिन्न विषयोंका सीखना बहुत उपयोगी है, पर साथ-ही-साथ एक ही चीजको अनेक पहलुओंसे भी देखनेकी आदत डालो, ताकि हाथी और सात अंधोंवाली कहानी न दोहरायी जाय। इस-से दिमागकी कट्टरतासे बचा जा सकता है, हम हमेशा जिद्दी बनकर मुरगीकी एक टांगपर नहीं डट जाते। मन ज्यादा उदार और नमनीय बनता है।

अपने मनको बाजार न बनने दो जहां विचारोंकी बेतहाशा भीड़ लगी रहा करे। मनको नीरव रहना सिखाया जाय। उसमें वही विचार प्रवेश पा सकें जिन्हें तुम अनुमति दो। शांतिसे मनको आराम मिलता है, उसकी काम करनेकी शक्ति बढ़ती है और वह अच्छी तरह विकसित हो सकता है। दिनमें कुछ समय नियमित रूपसे शांत और नीरव रहनेकी कोशिश करो।

और अंतमें आती है चैत्य और आध्यात्मिक शिक्षा। कहीं, किसी शिक्षा-प्रणालीमें इसकी बात नहीं की जाती। इसके बारेमें कुछ

कहना है भी ज्यादा कठिन। हम संक्षेपमें इसे भी छूते चलेंगे। जिनमें ज्यादा जाननेकी रुचि हो वे माताजीकी पुस्तक "शिक्षा" देख सकते हैं।

हर आदमीके अंदर एक अंगुष्ठमात्र सत्ता या चैत्य पुरुष होता है। यह एक प्रकारका प्रकाश है जिसपर मन, प्राण एक मोटा-सा परदा डाले रहता है और हमें इसका पता भी नहीं होता। कई बच्चोंमें यह प्रकाश बहुत स्पष्ट होता है लेकिन दुर्भाग्यवश माता-पिता और अध्यापक अपने अज्ञानके कारण इसे आगे नहीं आने देते। चैत्य सच्चे ज्ञानको पा सकता है, जो चीजें मनके द्वारा नहीं जानी जा सकतीं उन्हें यह आसानीसे जान सकता है और इसके द्वारा हम वहांतक पहुंच सकते हैं जो हमारे जीवनका आधार है, जीवनका सत्य है, जिसे धार्मिक लोग भगवान् कहते हैं। चैत्य ही अपनी नियतिका स्वामी होता है। इसे पानेके लिये हरएकको अपना ही रास्ता बनाना पड़ता है। अगर कोई सच्चा गुरु मिल जाय तो यह सौभाग्यकी बात है।

साधारण आदमी अपने जीवनमें सबसे अलग-थलग, अहंके छोटे-से घेरेमें बंद रहता है, लेकिन चैत्यके साथ परिचय हो जाय तो सीमाएं टूट जाती हैं, मनुष्य हर चीजको अपने अंदर और अपने-आपको हर चीजमें अनुभव करता है। तब पत्थर जड़ नहीं रह जाता, पशु-पक्षी मूक नहीं रहते, वनस्पति भी अपना रहस्य खोल देती है। इसे पाना कठिन है, यह भय भी रहता है कि हम किसी गलत चीज-को ही न पकड़ बैठें।

आध्यात्मिक बातोंके बारेमें फैसला कर लेना असंभव है इसलिये अपने मनको हठ करनेका अवसर न दो। माताजीने कुछ छोटे-मोटे गुर बताये हैं जो प्रारंभके लिये बहुत उपयोगी हैं। अपने निजी सुख-सुविधाको ही जीवनका लक्ष्य न बना लो। तुम्हारे अंतर-में एक छोटी-सी ज्वाला है, उसे प्रज्वलित करो और उसकी सहायता-से अंधकारको चीरकर आगे बढ़ो। यह ज्वाला विकासमें सहायता

देगी और अवांछनीय चीजोंको जलाकर भस्म कर देगी। तुम्हारे सामने कोई अप्रिय वस्तु आ जाय तो दुःखी या क्रुद्ध होनेकी जगह शांत रहो और यही मानो कि यह तुम्हें समता सिखानेके लिये आयी है। जो भी काम करना हो उसे खुशीसे करो, लेकिन खुशीको लक्ष्य मानकर कोई काम न करो। चीजोंके बाहरी रूपको देखकर ही अपनी राय न बना लो, यह जानो कि इनके पीछे एक महान् प्रज्ञा छिपी हुई है।

अपने लक्ष्यको हमेशा याद रखो। तुम्हें सत्यकी खोज करनी है, उसे पाना है। खाना खाओ तो पहले यह सोच लो कि यह तुम्हारे शरीरको पुष्ट बनायेगा और तुम्हें अपनी खोजमें सहायता देगा; सोने लगो तो पहले याद कर लो कि तुम्हें उस ओर जाना है, नींद तुम्हारी स्नायुओंको बल दे और सोते समय भी तुम अपने मार्गपर आगे बढ़ सको; बोलनेसे पहले तुम्हारी यही चाह हो कि तुम व्यर्थ-के शब्द न बोल जाओ। पग-पगपर तुम्हें यह ख्याल रहे कि तुम्हें उस ओर बढ़ना है। तुम्हारे जीवनका लक्ष्य एक ज्योतिर्मय गरुड़-की तरह तुम्हारे सिरपर घूमता रहे और तुम्हारी हर गति-विधिको मार्ग दिखा सके। इस तरह करनेसे तुम्हारे अंदरके दरवाजे खुल जायंगे।

लेकिन माताजी शिक्षाका कहीं अंत नहीं मानतीं। ये तो नीचेसे ऊपर उठनेवाली शिक्षा हुई। इसके बाद आयेगी अतिमानसिक शिक्षा जो ऊपरसे उतरकर हमारी उंगली पकड़कर अतिमानवताके मार्गपर ले जायेगी।

तो अभीतक जो हमने किया है और कर रहे हैं वह तो जो करना है उसकी तुलनामें कुछ भी नहीं है। बढ़ते चलो, बढ़ते चलो।

माताजीने शिक्षाके बारेमें बहुत कुछ कहा है। हम पाठकोंके आगे उनमेंसे कुछ उद्धरण रख रहे हैं।

— संपादक

शिक्षाका उद्देश्य

श्रीअरविंद :

"मानव मनकी दिव्य पूर्णता हमारा लक्ष्य है। इसलिये हमें पहले यह जानना चाहिये कि समग्र पूर्णता कौन-से तत्त्वोंसे बनती है। दूसरी चीज यह कि हमारी सत्ताकी मानव पूर्णतासे पृथक् ऐसी कौन-सी चीज है जिसे हम दिव्य पूर्णता कहते हैं। सारी चिंतनशील मानव जातिमें हर एक व्यक्ति अपने मनके द्वारा सोचकर एक आदर्श निश्चित कर सकता है और वहांतक पहुंचनेके लिये अपने-आपको विकसित कर सकता है। यद्यपि ऐसे वहुत ही कम होते हैं जो जीवनके इस महत्त्वपूर्ण लक्ष्यकी ओर ध्यान भी देते हों।"

(योग-समन्वयके आधारपर)

माताजी :

"जाननेके लिये सीखना, प्रकृति और जीवनके रहस्योंको जाननेके लिये अध्ययन करना, अपनी चेतनाको विकसित करनेके लिये अपने-आपको शिक्षा देना, अपना स्वामी वननेके लिये, अपनी कमजोरियों, अक्षमताओं, और अज्ञानपर विजय प्राप्त करनेके लिये, जीवनमें ज्यादा उत्कृष्ट, विशाल, उदार और सच्चे लक्ष्यकी ओर वढ़ सकनेके लिये तैयारी करना . . .।"

*

"सफलताको लक्ष्य मत बनाओ, हमारा लक्ष्य है पूर्णता। याद रखो कि तुम एक नये जगत्की देहलीपर हो, उसके जन्ममें भाग ले रहे हो और उसके सर्जनमें यंत्र-रूप हो। रूपांतरसे वढ़कर महत्त्व-पूर्ण चीज कुछ नहीं है। कोई लाभ इससे वढ़कर मूल्यवान नहीं है।"

*

माताजीने श्रीअरविंदाश्रममें एक शिक्षा-केन्द्रकी स्थापना की थी। उसके बारेमें किसीने पूछा:

प्र. हमारे शिक्षा-केंद्रका उद्देश्य और सच्चा लक्ष्य क्या है? क्या केवल श्रीअरविंदकी रचनाएं पढ़ाना ही हमारा उद्देश्य है? सभी या कुछ रचनाएं? या विद्यार्थियोंको श्रीअरविंद तथा माताजीकी पुस्तकें पढ़ सकनेके लिये तैयार करना ही हमारा लक्ष्य है?

माताजीका उत्तर था: "ये किताबें या कुछ और किताबें पढ़ सकनेके लिये तैयार करनेका सवाल नहीं है। सवाल है उन सबको विचार, भावना और क्रियाकी सामान्य मानवी रूढ़िसे बाहर खींचनेका जो इसके लिये समर्थ हों। जो लोग यहां हैं उन्हें मानवी ढंगसे सोचने और कार्य करनेके तरीकेकी गुलामीसे छुटकारा पानेके अवसर प्रदान करना। जो लोग सुनना चाहते हैं उन्हें यह सिखाना कि जीनेका एक दूसरा ज्यादा सच्चा तरीका है, कि श्रीअरविंदने हमें यह सिखाया है कि कैसे जीया जाय और सच्ची सत्ता बना जाय, कि यहांकी शिक्षाका लक्ष्य है बच्चोंको उस जीवनके लिये तैयार करना और उसके योग्य बनाना।

"बाकी सबके लिये, मानवी ढंगसे सोचने और रहनेके लिये संसार बहुत बड़ा है और वहां सबके लिये जगह है।

"हमें संख्या नहीं चाहिये — हमें चाहिये चयन। हमें प्रतिभाशाली विद्यार्थी नहीं चाहिये, हम जीती-जागती आत्माएं चाहते हैं।"

१०.२.६० (एक अध्यापकको लिखी गयी चिट्ठीसे)

*

इसी विषयपर माताजी एक और जगह कहती हैं:

"हम यहां केवल उन्हींको चाहते हैं जो एक ज्यादा ऊंचे और अच्छे जीवनके लिये अभीप्सा करते हैं, जिनमें ज्ञान और पूर्णताकी

प्यास है, जो तीव्रताके साथ एक ज्यादा समग्र रूपसे सच्चे भविष्यकी ओर ताकते हैं।"

*

"हमें यह जानना चाहिये और इसकी घोषणा करनेमें संकोच नहीं करना चाहिये कि हमारा विद्यालय ऐसे लोगोंको खोजने और प्रोत्साहित करनेके लिये है जिनमें प्रगतिकी आवश्यकता जीवनके मार्ग-दर्शनकी हदतक सचेतन हो गयी है।"

*

"हम एक ऐसी जाति चाहते हैं जिसमें अहम् न हो, जिसमें अहम्की जगह दिव्य चेतना हो।

"हम यही चाहते हैं। वह दिव्य चेतना जो जातिको विकसित होनेका और अतिमानसिक सत्ताको जन्म लेनेका अवसर देगी।"

शिक्षा

मनुष्यकी शिक्षा उसके जन्मकालसे ही आरंभ हो जानी चाहिये और उसके समूचे जीवन-भर चलती रहनी चाहिये। बल्कि, सच पूछा जाय तो, यदि शिक्षाको अत्यधिक मात्रामें फलदायक होना हो तो उसे जन्मसे पहले ही आरंभ हो जाना चाहिये। वास्तवमें स्वयं माता ही इस शिक्षाका प्रारंभ द्विविध क्रियाके द्वारा करती है: सबसे पहले यह अपनी निजी उन्नतिके लिये उसे स्वयं अपने ऊपर आरंभ करती है, और फिर उस बच्चेके ऊपर आरंभ करती है जिसे

वह अपने अंदर स्थूल रूपमें गढ़ती है। यह बात निश्चित है कि जन्म लेनेवाले बच्चेका स्वभाव बहुत कुछ उसे उत्पन्न करनेवाली मातापर, उसकी अभीप्सा और संकल्पपर निर्भर रहता है और जिस भौतिक वातावरणमें वह निवास करती है उसका प्रभाव तो पड़ता ही है। जो शिक्षा मांको प्राप्त करनी है उसके लिये यह बात ध्यान-में रखनी होगी कि उसके विचार सदा सुंदर और शुद्ध हों, भाव उच्च और सूक्ष्म तथा चारों ओरका वातावरण यथासंभव सुसमंजस और अत्यंत सादगीसे भरा हुआ हो। और अगर इसके साथ ही वह चेतन और निश्चित रूपमें यह इच्छा भी रखे कि वह जिस ऊंचे-से-ऊंचे आदर्शको धारण कर सकती है उसीके अनुसार वह बच्चे-को बनायेगी तो बच्चेको संसारमें आनेके लिये खूब उत्तम अवस्थाएं प्राप्त होंगी और उसके लिये अधिक-से-अधिक संभावनाएं खुल जायेंगी। भला ऐसी अवस्थामें कितने अधिक कठिन प्रयासों और निरर्थक जटिलताओंसे बचा जा सकता है!

शिक्षाके पूर्ण होनेके लिये उसमें पांच प्रधान पहलू होने चाहिये। इनका संबंध मनुष्यकी पांच प्रधान क्रियाओंसे होगा — भौतिक, प्राणिक मानसिक, आंतरात्मिक और आध्यात्मिक। साधारणतया शिक्षाके ये सब पहलू व्यक्तिके विकासके अनुसार, एक-के-बाद-एक करके, काल-क्रमसे आरंभ होते हैं। परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि एक पहलू दूसरेका स्थान ले ले, बल्कि सभी पहलुओंको, जीवनके अनन्तकालतक परस्पर एक-दूसरेको पूर्ण बनाते हुए जारी रहना चाहिये।

....इस विषयके विस्तारमें जानेसे पहले मैं माता-पिताओंको एक सलाह देना चाहती हूं। इनमें अधिकतर लोग विभिन्न कारणोंसे बच्चोंकी सच्ची शिक्षाके विषयमें बहुत कम सोचते हैं। जब उन्होंने संसारमें एक बच्चेको जन्म दे दिया, उसके भोजनका प्रबंध कर दिया तथा उसका स्वास्थ्य बनाये रखनेके लिये लगभग काफी अच्छे ढंगसे देखभाल रखते हुए उसकी विभिन्न भौतिक आवश्यकताएं पूरी कर दीं, तब वे समझ लेते हैं कि उन्होंने अपना कर्तव्य पूरे तौरसे निभा

दिया है। कुछ दिन बाद वे उसे स्कूलमें प्रविष्ट करा देंगे और उसकी मानसिक शिक्षाका भार अध्यापकके हाथोंमें सौंप देंगे।

कुछ माता-पिता ऐसे भी हैं जो यह जानते हैं कि उनके बच्चेको शिक्षा मिलनी चाहिये और वे उसे शिक्षा देनेकी चेष्टा भी करते हैं। पर उनमेंसे बहुत थोड़े लोग — जो इस विषयमें अत्यंत तत्पर और सच्चे होते हैं उनमेंसे भी बहुत थोड़े लोग — यह जानते हैं कि बच्चोंको शिक्षा देनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये सबसे पहला कर्तव्य है अपने-आपको शिक्षा देना, अपने विषयमें सचेतन होना और अपने ऊपर प्रभुत्व स्थापित करना जिससे कि हम अपने बच्चेके सामने कोई बुरा उदाहरण न पेश करें। क्योंकि एकमात्र उदाहरण-के द्वारा ही शिक्षा फलदायी बनती है। यदि हम अपने जीवंत उदाहरणके द्वारा अपनी सिखायी बातोंका सत्य उसे न दिखा दें तो केवल अच्छी बातें कहने और बुद्धिमानीका परामर्श देनेका बच्चेपर बहुत थोड़ा प्रभाव पड़ता है; सच्चाई, ईमानदारी, स्पष्टवादिता, साहस, निष्कामभाव, निःस्वार्थता, धैर्य, सहनशीलता, अध्यवसाय, शांति, स्थिरता, आत्म-संयम आदि सभी ऐसे गुण हैं जो सुंदर भाषणोंकी अपेक्षा अनंतगुना अधिक अच्छे रूपमें अपने उदाहरणके द्वारा सिखाये जाते हैं। माता-पिताओ! एक ऊंचा आदर्श अपने सामने रखो और उसी आदर्शके अनुकूल सर्वदा कार्य करो। तुम देखोगे कि तुम्हारा बच्चा भी धीरे-धीरे उस आदर्शको अपने अंदर ला रहा है और जो-जो गुण तुम उसके स्वभावमें देखना चाहते हो उन्हें वह अपने-आप अभिव्यक्त कर रहा है। यह अत्यंत स्वाभाविक है कि बच्चे अपने माता-पिताके प्रति आदर और भक्ति-भाव रखते हैं, अगर वे एकदम अयोग्य ही न हों तो, वे अपने बच्चोंको देवता जैसे प्रतीत होते हैं और बच्चे यथाशक्ति उत्तम-से-उत्तम रूपमें उनका अनुकरण करनेकी चेष्टा करते हैं।

बहुत थोड़े लोगोंको छोड़कर, प्रायः सभी माता-पिता इस बातका विचार नहीं करते कि उनके दोषों, आवेगों, दुर्बलताओं और आत्म-

संयमके अभावका उनके बच्चोंपर कितना बुरा प्रभाव पड़ता है। अगर तुम चाहते हो कि तुम्हारा बच्चा तुम्हारा आदर करे तो अपने लिये आदर-भाव रखो और प्रत्येक मुहूर्त सम्मानके योग्य बनो। कभी स्वेच्छाचारी, अत्याचारी, असहिष्णु और क्रोधित मत होओ। जब तुम्हारा बच्चा तुमसे कोई प्रश्न पूछे तब तुम, यह समझकर कि वह तुम्हारी बात नहीं समझ सकता, उसे जड़ता और मूर्खताके साथ कोई उत्तर मत दो। अगर तुम थोड़ा कष्ट स्वीकार करो तो तुम सदा ही उसे अपनी बात समझा सकोगे। इस प्रसिद्ध उक्तिके होते हुए भी कि सत्य बोलना सदा अच्छा नहीं होता, मैं दृढ़तापूर्वक कहती हूं: "सत्य बोलना सदा अच्छा होता है।" चतुराई केवल इस बातमें है कि उसे इस ढंगसे कहा जाय कि सुननेवालेका मस्तिष्क उसे ग्रहण कर ले। जीवनके प्रारंभिक कालमें बारहसे चौदह वर्षकी अवस्थातक, बच्चोंका मन सूक्ष्म भावनाओं और सामान्य विचारोंतक नहीं पहुंच पाता। फिर भी तुम ठोस उपमा, रूपक या दृष्टांत द्वारा ये सब चीजें समझनेका अभ्यास उसे करा सकते हो। काफी बड़ी उम्रतक और जो लोग मानसिक रूपसे सदा ही छोटे बने रहते हैं उन लोगोंके लिये सैद्धांतिक विवेचनके एक ढेरकी अपेक्षा एक आख्यान, एक कथानक, यदि अच्छे ढंगसे कहा जाय तो, अधिक शिक्षाप्रद होता है। एक भूलसे तुम्हें और बचना होगा। जबतक कोई निश्चित उद्देश्य न हो और एकदम अनिवार्य न हो जाय तबतक कभी अपने बच्चेको बुरा-भला मत कहो। बार-बार डांट-फटकार खानेसे बच्चा उसके प्रति कुंद हो जाता है और फिर वह शब्दों और स्वरकी कठोरताको बहुत अधिक महत्त्व नहीं देता। विशेषकर इस बातकी सावधानी रखो कि ऐसे अपराधके लिये, जिसे तुम स्वयं करते हो, उसे कभी मत डांटो। बच्चेकी दृष्टि बड़ी पैनी और साफ होती है, वे बहुत जल्दी तुम्हारी दुर्बलताओंका पता लगा लेते हैं और उन्हें बिना किसी दया-भावके नोट कर लेते हैं।

जब बच्चा कोई भूल कर बैठे तो अपनी ओरसे ऐसा वातावरण

उत्पन्न कर दो कि वह अपने-आप सरलता और सच्चाईके साथ उसे स्वीकार कर ले। और जब वह स्वीकार कर ले तब तुम दयालुता और प्रेमके साथ उसे समझा दो कि उसके कार्यमें क्या भूल थी और उसे फिर दुबारा वैसा नहीं करना चाहिये। किसी भी हालतमें उसे बुरा-भला मत कहो, स्वीकार किये हुए अपराधको अवश्य क्षमा कर देना चाहिये। तुम्हें अपने और अपने बच्चेके बीच किसी प्रकारका भय नहीं घुसने देना चाहिये, भयके द्वारा शिक्षा देना बड़ा खतरनाक तरीका है, यह सदा ही छल-कपट और असत्य-को उत्पन्न करता है। स्पष्टदर्शी, सुदृढ़, पर साथ ही कोमल प्रेम और पर्याप्त व्यावहारिक ज्ञान विश्वासका बंधन पैदा करते हैं जो तुम्हारे बच्चेकी शिक्षा फलदायी बनानेके लिये अत्यंत आवश्यक होता है। और फिर यह कभी न भूलो कि तुम्हें अपने कर्तव्यके शिखर-पर स्थित रहने तथा उसे वास्तविक रूपमें निभानेके लिये सदा और निरंतर ऊपर उठना होगा। बच्चेको जन्म देनेके नाते ही तुम्हें उसके प्रति अपना कर्तव्य निभाना चाहिये।

('शिक्षा' पुस्तकसे)

मनकी शिक्षा

सब प्रकारकी शिक्षाओंमें सबसे अधिक प्रचलित है मनकी शिक्षा। तो भी, कुछ एक अपवादोंको छोड़कर, साधारणतः इसमें ऐसे छिद्र रह जाते हैं जो इसे बहुत ही अपूर्ण और अंतमें एकदम निरर्थक बना देते हैं।

मोटे तौरपर हम कह सकते हैं कि शिक्षाका अर्थ लोग समझते हैं मनकी आवश्यकीय शिक्षा। बच्चेको कुछ वर्ष एक कठोर शिक्षा-पद्धतिके अनुसार शिक्षा दे चुकनेपर, जो मस्तिष्कको प्रबुद्ध करनेकी

अपेक्षा कहीं अधिक उसमें ज्ञान-सामग्रीको ठूंस देती है, हम समझ लेते हैं कि उसके मानसिक विकासके लिये जो कुछ करना आवश्यक था वह पूरा हो गया। पर बात ऐसी नहीं है। अगर शिक्षा समुचित मात्रामें और विचार-विवेकके साथ दी भी जाती है और वह मस्तिष्कको कोई हानि नहीं भी पहुंचाती, तो भी वह मानव मनको वे सब क्षमताएं नहीं दे पाती जो उसे एक अच्छा और उपयोगी यंत्र बनानेके लिये आवश्यक हैं। साधारणतया जो शिक्षा बच्चोंको दी जाती है वह, अधिक-से-अधिक, शारीरिक व्यायामकी तरह मस्तिष्ककी नमनीयताको बढ़ा सकती है। इस दृष्टिकोणसे देखें तो, मानवी विद्याकी प्रत्येक शाखा ही एक विशेष प्रकारका मानसिक व्यायाम होती है, और इन सब शाखा-प्रशाखाओंमेंसे प्रत्येकके अंदर जिस शब्दावलिका प्रयोग किया जाता है वह उस शाखाकी अपनी विशेष और सुनिश्चित भाषा होती है।

मनकी सच्ची शिक्षाके, उस शिक्षाके जो मनुष्यको एक उच्चतर जीवनके लिये तैयार करेगी, पांच प्रधान अंग हैं। साधारणतया ये अंग एक-के-बाद-एक आते हैं, पर विशेष व्यक्तियोंमें वे अदल-बदलकर या एक साथ भी आ सकते हैं। वे पांच अंग, संक्षेपमें, इस प्रकार हैं :

१. एकाग्रताकी शक्तिका, मनोयोगकी क्षमताका विकास करना।

२. मनको व्यापक, विशाल, बहुविध और समृद्ध बनानेकी क्षमताएं विकसित करना।

३. जो केंद्रीय विचार या उच्चतर आदर्श या परमोज्ज्वल भावना जीवनमें पथप्रदर्शकका काम करेगी उसे केंद्र बनाकर समस्त विचारोंको सुसंगठित, सुव्यवस्थित करना।

४. विचारोंको संयमित करना, अनिष्ट विचारोंका त्याग करना जिससे मनुष्य अंतमें, जैसा चाहे तैसा और जब चाहे तब विचार कर सके।

५. मानसिक निश्चलताका, परिपूर्ण शांतिका और सत्ताके उच्च-

तर क्षेत्रोंसे आनेवाली अंतःप्रेरणाओंको अधिकाधिक पूर्णताके साथ ग्रहण करनेकी क्षमताका विकास करना।

शिक्षाके इन अंगोंको कार्यान्वित करनेके लिये भिन्न-भिन्न व्यक्तियोंके लिये जिन पद्धतियोंका व्यवहार किया जा सकता है उन सबका पूरा व्योरा देना तो यहां संभव नहीं है, पर फिर भी कुछ व्याख्यात्मक सूचनाएं दी जा सकती हैं।

यह वात अस्वीकार नहीं की जा सकती कि वच्चेकी मानसिक उन्नतिको जो चीज सबसे अधिक वाधा पहुंचाती है वह है उसके विचारोंका निरंतर विक्षिप्त होते रहना। वालकका विचार तितली-की तरह इधर-उधर उड़ता रहता है और उसे एकाग्र करनेके लिये उसे अपनी ओरसे महान् प्रयास करनेकी आवश्यकता होती है। और फिर भी यह क्षमता उसमें गुप्त रूपसे विद्यमान है। क्योंकि जव तुम किसी चीजमें उसकी दिलचस्पी पैदा कर पाते हो तव वह काफी हदतक ध्यान जमानेमें समर्थ हो जाता है। अतएव, यह शिक्षककी चतुराईपर निर्भर है कि वह धीरे-धीरे वच्चेके अंदर ध्यान जमानेके लिये निरंतर एक समान प्रयास करने और कोई कार्य करते समय उसमें अधिकाधिक पूर्णताके साथ डूव जानेकी क्षमता और योग्यता पैदा करे। ध्यान एकाग्र करनेकी इस क्षमताको विकसित करनेवाले सभी साधन अच्छे हैं; आवश्यकता और परिस्थितिके अनुसार खेलसे आरंभ कर पारि-तोषिकतक सभी काममें लिये जा सकते हैं। पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण चीज है मनोवैज्ञानिक क्रिया। सर्वप्रधान साधन यह ह कि जो चीज हम वच्चेको सिखाना चाहते हैं उसमें उसकी दिलचस्पी उत्पन्न कर दें, कार्य करनेकी रुचि, उन्नति करनेकी इच्छा जगा दें। वच्चे-को देने योग्य सबसे मूल्यवान उपहार यही है कि हम उसमें सीखने-का अनुराग, सर्वदा और सर्वत्र सीखनेका अनुराग पैदा कर दें। उस-के लिये जीवनकी सभी परिस्थितियां, सभी घटनाएं अधिक और

सदा अधिकाधिक सीखते रहनेके लिये नित्य नवीन अवसर बन जायं।

इसके लिये सजगता और एकाग्रताके अतिरिक्त निरीक्षण, यथार्थ अंकन तथा विश्वस्त स्मरण-शक्ति भी पैदा करनी चाहिये। निरीक्षणकी क्षमताका विकास विभिन्न प्रकारके और स्वाभाविक अभ्यासोंके द्वारा, बच्चेके विचारको सजग, सतर्क और स्फूर्तिमान बनाये रखनेमें सहायता देनेवाले सभी सुअवसरोंका उपयोग करके किया जा सकता है। स्मरण-शक्तिकी अपेक्षा उसकी बोध-शक्ति बढ़ानेपर बहुत अधिक बल देना चाहिये। मनुष्य केवल वही कुछ जानता है जिसे वह समझता है। जो चीज मनुष्य यंत्रकी तरह रट लेता है वह धीरे-धीरे धुंधली होती जाती है और अतमें विलीन हो जाती है। जो कुछ तुम समझ जाते हो उसे तुम कभी नहीं भूलते। कोई भी चीज कैसे और क्यों होती है यह बच्चेको समझानेमें तुम्हें कभी आनाकानी नहीं करनी चाहिये। अगर तुम स्वयं न समझा सको तो तुम्हें उसे किसी ऐसे व्यक्तिके पास भेज देना चाहिये जो उसका उत्तर देने योग्य ज्ञान रखता हो अथवा उस प्रश्नसे संबंध रखनेवाली पुस्तकें दे देनी चाहिये। बस, इसी तरह तुम धीरे-धीरे बच्चेमें सच्चे अध्ययनकी रुचि तथा ज्ञान-प्राप्तिके लिये अथक प्रयत्न करनेकी आदत जगा सकते हो।

इस तरह स्वभावतः ही हम विकासके दूसरे स्तरमें आ जायंगे जहांपर मन अपनेको विस्तारित और समृद्ध बनायेगा।

जैसे-जैसे बच्चा उन्नति करे वैसे-वैसे तुम उसे यह दिखलाओगे कि किस प्रकार प्रत्येक चीज अध्ययनका सुन्दर विषय बन सकती है बशर्ते कि प्रश्नपर ठीक ढंगसे विचार किया जाय। प्रत्येक दिन, प्रत्येक मुहूर्त्तका जीवन समस्त पाठशालाओंसे बढ़कर होता है; वह होता है बहुविध और जटिल, अदृष्टपूर्व अनुभवोंसे, समाधानके लिये प्रस्तुत समस्याओंसे, स्पष्ट और प्रभावक उदाहरणोंसे तथा प्रत्यक्ष परिणामोंसे भरा पूरा। अगर तुम बच्चोंके पूछे हुए असंख्य प्रश्नोंका बुद्धिमानी तथा स्पष्टताके साथ उत्तर दे सको तो उनमें बड़ी

आसानीसे एक स्वस्थ-सुन्दर खोजकी वृत्ति जगायी जा सकती है। कोई भी मजेदार उत्तर अपनी शृंखलामें अन्यान्य चीजोंको खींच ले आता है और बच्चा, अपना ध्यान आकृष्ट होनेके कारण, विना किसी प्रयासके ही वहुत अधिक, पाठशालामें वैठकर साधारणतया जो कुछ सीखता है उससे बहुत अधिक सीख जाता है। सावधानी तथा वुद्धिमानीके साथ पुस्तकोंका चुनाव करनेसे ही बच्चेमें लाभदायी चीजें पढ़नेकी रुचि उत्पन्न होती है जो कि एक साथ ही शिक्षाप्रद और आकर्षक होती हैं। फिर तुम्हें ऐसी किसी चीजसे डरना नहीं चाहिये जो वच्चेकी कल्पना-शक्तिको जगाती है और संतुष्ट करती है: वास्तवमें कल्पना ही वह चीज है जो सर्जनशील मानसिक वृत्ति-को विकसित करती है तथा यही वह चीज है जो अध्ययनको एक सजीव वस्तु वना देती है और जिससे मन आनंदके साथ वर्द्धित होता है।

मनकी नमनीयता और विशालता वढ़ानेके लिये हमें केवल अनेक और बहुविध विषयोंके अध्ययनकी ओर ही नहीं, वल्कि विशेषकर, एक ही विषयपर विभिन्न दिशाओंसे विचार करनेकी ओर ध्यान देना चाहिये। ऐसा करनेसे वालक व्यावहारिक तरीकेसे यह समझ जायगा कि एक ही वौद्धिक समस्याका सामना, निपटारा तथा समा-धान करनेके वहुतेरे रास्ते हैं। इस तरह उसका मस्तिष्क सव प्रकारकी कठोरताओंसे मुक्त हो जायगा। और साथ-ही-साथ उस-की चिंतन-शक्ति अधिक समृद्ध तथा नमनीय हो जायगी और कहीं अधिक बहुमुख एवं व्यापक समन्वयके लिये तैयार हो जायगी। इस तरीकेसे वच्चेमें यह भाव भी भरा जा सकता है कि मानसिक ज्ञान अत्यंत आपेक्षिक वस्तु है और फिर धीरे-धीरे ज्ञानके एक अधिक सच्चे उद्‌गमके लिये उसमें अभीप्सा जगायी जा सकती है।

निःसंदेह जैसे-जैसे बच्चा अपने अध्ययनमें अग्रसर होता है और उम्रमें बड़ा होता है, वैसे-वैसे उसका मन भी परिपक्व होता है और सामान्य भावनाओंको ग्रहण करनेमें अधिकाधिक सक्षम होता है; और फिर इसके साथ-साथ सदैव निश्चयात्मक भावकी आवश्यकता

उत्पन्न हो जाती है, एक ज्ञानकी आवश्यकता महसूस होती है जो इतना अधिक स्थायी हो कि उसे आधार बनाकर एक मानसिक रचना तैयार की जा सके — ऐसी रचना तैयार की जा सके जो मस्तिष्कमें एकत्र हुई सभी भिन्न और अस्त-व्यस्त और वहुधा विरोधी भावनाओंको सुव्यवस्थित तथा क्रमवद्ध करने दे। निश्चय ही, यदि हम अपने विचारोंकी अस्त-व्यस्ततासे वचना चाहें तो उन्हें इस प्रकार क्रमवद्ध करना वहुत ही आवश्यक है। सभी विरोधी चीजें प्रतिपूरक चीजोंमें रूपांतरित हो सकती हैं; पर उसके लिये हमें एक ऐसी उच्चतर भावनाको ढूंढ निकालना होगा जो उन्हें सुसमंजस वनानेमें समर्थ हो। यह सदा ही अच्छा है कि सभी समस्याओंपर संभाव्य सभी दृष्टिकोणोंसे विचार किया जाय; इससे हम पक्षपात और संकीर्णतासे वच जाते हैं। पर अगर हमारे विचारको सक्रिय और सृष्टिक्षम होना हो तो उसे, प्रत्येक क्षेत्रमें, गृहीत सभी दृष्टिकोणोंका एक स्वाभाविक और युक्तिसंगत समन्वय होना चाहिये। अगर तुम्हें अपने सभी विचारोंको एक साथ शक्तिशाली तथा निर्माण-कारी शक्तिका रूप देना हो तो तुम्हें अपने मानसिक समन्वयकी केंद्रीय भावनाको चुननेमें वहुत सावधानी रखनी चाहिये; क्योंकि उसीके ऊपर तुम्हारे समन्वयका मूल्य निर्भर करेगा। जितनी ही ऊंची और विशाल तुम्हारी केंद्रीय भावना होगी और जितनी ही अधिक वह विश्वजनीन होगी, काल और देशसे ऊपर उठी हुई होगी, उतनी ही वहुसंख्यक और जटिल भावनाओं, धारणाओं और विचारोंको वह सुव्यवस्थित और सुसमंजस वनानेमें समर्थ होगी।

कहनेकी आवश्यकता नहीं कि व्यवस्थित करनेका कार्य तुरत पूरा-का-पूरा नहीं किया जा सकता। मनको, अगर उसे अपने वल और यौवनको वनाये रखना है, तो नित्य-निरंतर उन्नत होना होगा, सभी नये-नये ज्ञानोंके प्रकाशमें अपनी मान्यताओंको सुधारते रहना होगा, नयी मान्यताओंको शामिल करनेके लिये अपने क्षेत्रको वढ़ाना होगा और उसके लिये अपने विचारोंको फिरसे श्रेणीवद्ध और सुसंगठित

करना होगा जिससे कि उनमेंसे प्रत्येक विचारको, दूसरोंके साथ उसके संबंधको देखते हुए, अपना समुचित स्थान प्राप्त हो और इस तरह समूचा विचार-समुदाय सुसमंजस और सुव्यवस्थित हो जाय।

परंतु हमने अबतक जो कुछ कहा है वह सब चिंतनशील मनसे संबंध रखता है, उस मनसे संबंध रखता है जो ज्ञानार्जन करता है। पर ज्ञानार्जन मानसिक कार्यका केवल एक अंग है। कम-से-कम इतना ही प्रधान दूसरा अंग है रचनात्मक वृत्ति, रूप देखनेकी क्षमता और इसलिये कार्यके लिये तैयारी करनेकी क्षमता। मानसिक कार्य-के इस अंशको, यद्यपि यह है बहुत ही महत्त्वपूर्ण, बहुत कम लोगोंने ही विशेष अध्ययन या अनुशीलनका विषय बनाया है। केवल वही लोग जो किसी कारणवश अपनी मानसिक क्रियाओंपर कठोर नियं-त्रण करना चाहते हैं, इस रचनात्मक वृत्तिका निरीक्षण और अनु-शासन करनेकी बात सोचते हैं। और फिर, जब वे इसके लिये प्रयास करने लगते हैं तब ऐसी महान् कठिनाइयां उनके सामने खड़ी हो जाती हैं जो अलंघ्य प्रतीत होती हैं।

फिर भी मनकी इस रचनात्मिका क्रियाके ऊपर संयम स्थापित करना आत्म-शिक्षणका अत्यंत महत्त्वपूर्ण अंग है। यहांतक कहा जा सकता है कि इसके बिना किसी भी प्रकारका मानसिक प्रभुत्व पाना संभव नहीं। अध्ययनका जहांतक संबंध है, सभी विचार स्वी-कार करने योग्य हैं और उन सबको उस समन्वयके अंदर ले आना चाहिये जिसका कार्य ही होगा अधिकाधिक समृद्ध और बहुविध होना; पर, कार्यका जहांतक संबंध है, बात इससे एकदम भिन्न होगी। जिन विचारोंको हम स्वीकार करेंगे उन्हें कार्य रूपमें परिणत करने-के लिये हमें उनपर कठोर संयम स्थापित करना होगा। हमारे मानसिक समन्वयके आधारभूत केंद्रीय विचारका साधारण झुकाव जिस ओर हो, उसीके साथ मेल खानेवाली भावनाओंको हमें कार्य रूपमें अभिव्यक्त होने देना चाहिये। इसका अर्थ होता है कि हमारी मानसिक चेतनामें जो भी विचार प्रवेश करे उसे हमें केंद्रीय भावना-

के सामने ला रखना चाहिये; और अबतक एकत्र किये हुए विचारों-को बीचमें अगर उस विचारको अपना समुचित स्थान प्राप्त हो जाय तो उसे समन्वयके अंदर शामिल करना चाहिये; अगर उसे अपना समुचित स्थान प्राप्त न हो तो उसे बाहर फेंक देना चाहिये जिससे कि वह कार्यके ऊपर कोई भी प्रभाव न डाल सके। मानसिक पवित्रीकरणका यह कार्य खूब नियमित रूपसे करना चाहिये और तभी अपने कार्योंके ऊपर हमारा पूर्ण अधिकार सुरक्षित रह सकता है।

उस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये उत्तम यह है कि थोड़ा-सा समय दैनिक रूपमें नियत रखा जाय जब कि हम अपने विचारोंको चुप-चाप देखें और अपने समन्वयके भीतर यथास्थान सजाकर रखें। एक बार जहां इस बातकी आदत पड़ गयी कि फिर तुम अपने विचारोंके ऊपर, कार्यादिके भीतर भी, संयम बनाये रख सकोगे और इस योग्य हो जाओगे कि जो कार्य तुम कर रहे हो उसके लिये जो विचार उपयोगी नहीं हैं उन्हें सामने न आने दो। विशेष-कर, यदि सजगता और एकाग्रताकी शक्तिको निरंतर बढ़ाया जाय तो हमारी बाह्य सक्रिय चेतना केवल उन्हीं विचारोंको आने देगी जिनकी आवश्यकता होगी और तब वे सब-के-सब अधिक शक्ति-संपन्न और फलोत्पादक हो जायेंगे। अगर, एकाग्रता तीव्र हो जाने-पर, यह आवश्यक हो कि चिंतन बिलकुल किया ही न जाय, तो समस्त मानसिक प्रकंपन बंद करके प्रायः पूर्ण निश्चल-नीरवता प्राप्त की जा सकती है। इस निश्चल-नीरवताके अंदर मनुष्य धीरे-धीरे उच्चतर मानस क्षेत्रोंकी ओर खुल सकता है और वहांसे जो अंतः-प्रेरणा आती है उन्हें स्मरण रखना सीख सकता है।

परंतु इस अवस्थाके प्राप्त होनेसे पहले भी निश्चल-नीरवता अपने-आपमें अत्यंत उपयोगी चीज है। जिन लोगोंका मन कुछ विकसित और क्रियाशील होता है उनमेंसे अधिकांशका मन कभी शांत नहीं रहता। दिनके समय, उसकी क्रियापर एक प्रकारका संयम रहता है,

पर रातके समय, शरीरकी निद्राकी अवस्थामें, जाग्रत् अवस्थाके संयमके प्रायः संपूर्ण रूपमें हट जानेपर, मन अत्यधिक क्रियाशील हो जाता है और उसकी सारी क्रियाएं वहुधा असंवद्ध होती हैं। इसके कारण मनपर एक प्रकारका जोर पड़ता है जो अंतमें थकावट ले आता है और मानसिक शक्तियोंको कम कर देता है।

असली वात यह है कि मानव सत्ताके अन्य सभी भागोंकी तरह मनको भी विश्रामकी आवश्यकता होती है और उसे यह विश्राम तबतक नहीं मिल सकता जबतक कि हम यह न जान लें कि यह दिया कैसे जाता है। अपने मनको विश्राम देनेकी कला एक ऐसी चीज है जो हमें अवश्य आयत्त करनी चाहिये। मनको विश्राम देनेका एक तरीका है मनके कार्यको वदलते रहना; परंतु सबसे अधिक विश्रामकी संभावना विद्यमान है निश्चल-नीरवताके अंदर। जहांतक मानसिक वृत्तियोंका संबंध है, निश्चल-नीरवताकी शांतिमें कुछ मिनट वितानेका अर्थ होता है घंटों सोनेकी अपेक्षा कहीं अधिक लाभदायी विश्राम लेना।

जब हम अपनी इच्छानुसार मनको निश्चल-नीरव वनाना और ग्रहणशील निश्चल-नीरवतामें उसे एकाग्र करना सीख जायंगे तब ऐसी कोई समस्या नहीं रह जायगी जिसे हम हल न कर सकें, कोई ऐसी मानसिक कठिनाई नहीं रह जायगी जिसका कोई समाधान न प्राप्त हो जाय। जब विचार चंचल होता है तब वह अस्त-व्यस्त और शक्तिहीन हो जाता है; सजग शांतिके अंदर ही ज्योति प्रकट हो सकती है और मनुष्यकी क्षमताओंके नवीन क्षेत्रोंको उन्मुक्त कर सकती है।

शिक्षाका आधार

एक और गुण है जिसे बच्चोंमें बचपनसे ही विकसित करना चाहिये। वह है अस्वस्थताकी, नैतिक असंतुलनकी वह भावना जो तब आती है जब उसने अमुक चीजें की हों। यह भावना सजाके डरसे नहीं, बल्कि सहज रूपसे आती है। उदाहरणके लिये, एक बच्चा शरारतसे अपने एक मित्रको चोट पहुंचाता है। अगर वह अपनी सामान्य और स्वाभाविक अवस्थामें है तो उसे अपनी सत्ताकी गहराईमें दुःख महसूस होगा क्योंकि उसने अपने आंतरिक सत्यके विरुद्ध काम किया है।

क्योंकि सारी शिक्षाओंके बावजूद, सभी विचारोंके बावजूद, गहराईमें कोई ऐसी चीज है जिसमें पूर्णताकी, उत्कृष्टताकी और सत्यकी भावना रहती है और दुर्भाग्यवश इस सत्यकी विरोधी सभी गतिविधियां उस चीजका खंडन करती हैं। बच्चा अपने वातावरणसे, अपने इर्द-गिर्दके बुरे उदाहरणोंसे विकृत न हुआ हो, अगर वह अपनी सामान्य सहज अवस्थामें हो तो अपनी सत्ताके सत्यके विपरीत कोई चीज करनेपर उसे बेचैनी महसूस होती है। और बादमें चलकर ठीक इसी जगह उसे प्रगतिके प्रयासका आधार बनाना चाहिये।

क्योंकि अगर तुम किसी ऐसी शिक्षा या ऐसे सिद्धांतको खोजना चाहो जो तुम्हारी प्रगतिका आधार बने तो तुम्हें कभी कुछ न मिलेगा। बल्कि तुम्हें कोई और चीज मिलेगी क्योंकि जलवायु, काल और सभ्यताके अनुसार शिक्षाओंमें परस्पर विरोध होता है। जब एक तुमसे कहता है: "यह ठीक है," तो दूसरा कहता है: "यह बुरा है," — और वह भी उसी तर्क और आग्रहके साथ। फलस्वरूप उसको नींव नहीं बनाया जा सकता। धर्मने हमेशा एक सिद्धांत स्थापित करनेकी कोशिश की है। वह तुमसे कहेगा कि अगर तुम सिद्धांतके अनुसार चलो तो तुम सत्यके पक्षमें होओगे

वरना मिथ्यात्वके पक्षमें। लेकिन यह चीज कहीं नहीं पहुंचाती, केवल गड़वड़ ही पैदा करती है।

एक ही सच्चा पथप्रदर्शक है और वह है 'आंतरिक पथप्रदर्शक' जो मानसिक चेतनामेंसे नहीं गुजरता।

स्वभावतः अगर किसी बच्चेको हानिकारक शिक्षा मिली है तो वह अपने अंदर उस सच्ची चीजको अधिकाधिक वुझानेकी कोशिश करेगा। कभी-कभी तो वह इतना सफल हो जाता है कि उस चीजके साथ और विवेकके साथ सारा संपर्क खो वैठता है। इसीलिये मैं उसपर जोर दे रही हूं और कहती हूं कि एकदम छोटी उमरसे बच्चोंको यह सिखाया जाना चाहिये कि एक आंतरिक सद्वस्तु है —उनके अपने अंदर, पृथ्वीके अंदर और विश्वके अंदर। उन्हें यह भी सिखाया जाना चाहिये कि वे खुद, पृथ्वी और विश्व इस सत्यके क्रिया-कलाप हैं, कि यह सत्य न हो तो वे टिक न सकेंगे, जितनी देर रहते हैं उतनी भी नहीं और हर एक चीज आकार लेते ही घुल जायगी। और चूंकि यही विश्वका प्रभावशाली आधार है इसलिये स्वभावतः इसीकी जीत होगी। और जो कुछ उस सनातन वस्तुका विरोध करता है, जो विश्वकी नींव है, वह इसके सामने टिक नहीं पाता।

स्वभावतः वच्चेको दार्शनिक व्याख्याएं देनेसे काम न चलेगा। लेकिन हम उसे भली-भांति इस प्रकारके आंतरिक सुखकी, संतोषकी और कभी-कभी एक ऐसी खुशीकी भावना दे सकते हैं जो इस अंतः-स्थित मौन और छोटी वस्तुकी बात माननेपर जागती है। वह वस्तु उसे अपने विरुद्ध कोई चीज करनेसे रोकेगी। हम इस प्रकार-की अनुभूतिको शिक्षाका आधार बना सकते हैं।

दो आवश्यकताएं

यदि धीमे क्रमविकासके स्थानपर हठात् कोई ऐसी चीज प्रकट हो जाय जो अतिमानसिक जगत्‌की हो तो मनोमय जीव, मनुष्य उसे चमत्कार कह सकता है, क्योंकि वह एक ऐसी चीजका हस्तक्षेप होगा जिसे वह अपने अंदर ज्ञानपूर्वक धारण नहीं करता और जो उसके सचेतन जीवनमें हस्तक्षेप करती है। और यथार्थमें, चमत्कारों- के प्रति जो यह रुझान है, जो बहुत प्रवल है — जो लोग मानसिक रूपमें बहुत अधिक विकसित हैं उनकी अपेक्षा बच्चोंमें तथा बच्चों जैसा हृदय रखनेवालोंमें बहुत अधिक प्रवल है — उसकी ओर यदि तुम दृष्टिपात करो तो तुम्हें पता चलेगा कि यह 'परम अद्‌भुत' — सामान्य जीवनमें प्राप्त होने योग्य किसी भी चीजसे बहुत अधिक ऊंची किसी चीज — की अभीप्साकी सिद्धिमें विश्वास है।

वास्तवमें, शिक्षामें हमें सर्वदा दो समानांतर प्रवृत्तियोंको प्रोत्साहित करना चाहिये। पहली है, 'परमाश्चर्यमय'के लिये तरसनेकी प्रवृत्ति, उस चीजकी प्यास जो अप्राप्य प्रतीत होती है, जो तुम्हें दिव्यत्वकी भावनासे भर देती है। परंतु इसके साथ-ही-साथ, जब हम संसारकी ओर, जैसा कि यह है, देखें तो हमें यथार्थ शुद्ध, सच्चे निरीक्षणको उत्साहित करना चाहिये, पूरे ब्योरेकी यथार्थताके लिये समस्त कल्पनाओंको दूर करने, निरंतर संयम रखने, एक अत्यंत व्यावहारिक, अत्यंत सतर्क विवेकशीलतापर जोर देना चाहिये। ये दोनों बातें समानांतर चलनी चाहिये। सामान्यतया, तुम इस विचारसे एकको मार देते हो कि यह दूसरेको बढ़ानेके लिये आवश्यक है। परंतु यह एकदम गलत है। ये दोनों साथ-साथ रह सकती हैं और एक ऐसा क्षण भी है जब मनुष्यको यह देखनेका पर्याप्त ज्ञान रहता है कि ये दोनों एक ही वस्तुके दो पक्ष हैं और वही है दिव्य दृष्टि, उच्चतर विवेक। उस समय एक सीमित दर्शन और दिव्य दृष्टिके

स्थानपर हमारा विवेक एकदम सच्चा, शुद्ध, यथातथ्य बन जाता है, पर वह विशाल होता है और अपने अंदर एक ऐसे समूचे क्षेत्र-को लिये रहता है जो अभीतक ठोस अभिव्यक्तिका अंग नहीं है।

शिक्षाके दृष्टिकोणसे यह बात बहुत महत्त्वपूर्ण होगी।

संसार जैसा है, उसे ठीक-ठीक वैसा ही स्थूल रूपमें, अत्यंत पार्थिव और ठोस ढंगसे देखना तथा जैसा वह हो सकता है उसे एक अत्यंत मुक्त, अत्यंत ऊंची, अत्यधिक आशा और अभीप्सा और अद्‌भुत निश्चयतासे भरी हुई सूक्ष्म-दृष्टिसे देखना — ये दोनों विवेक-शक्तिके दो ध्रुवके समान छोर हैं। हम अत्यंत महान्, अत्यंत अद्‌भुत, अत्यंत सशक्त, अत्यंत अर्थपूर्ण और अत्यंत संपूर्णके रूपमें जिसकी कल्पना कर सकते हैं वह उसके मुकाबले कुछ नहीं है जो यह हो सकता है और इसके साथ-ही-साथ ब्योरेमें जो हमारी छोटी-से-छोटी यथार्थता होगी वह कभी पर्याप्त यथार्थ नहीं होगी। और ये दोनों एक साथ रहने चाहिये। जब मनुष्य इसे (नीचेकी ओर संकेत) जानता है और उसे (ऊपरकी ओर संकेत) जानता है तब वह दोनोंको साथ रखनेमें समर्थ होता है।

मातृवाणी, खंड १० (विचार और सूत्र, पृ० १७०)

अपने-आपको जानना और अपने ऊपर अधिकार पाना

हर एक जीवंत प्राणीके लिये अपने-आपको जानना और अपने ऊपर अधिकार पाना बहुत मूल्यवान है। "अपने-आपको जानना"से मेरा मतलब है अपनी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओंका उद्देश्य जानना,

अपने अंदर जो कुछ चल रहा हो उसके क्यों और कैसेको जानना। आत्म-संयमका मतलब है अपने आवेगों, इच्छाओं और सनकोंपर कान न देकर, उनकी वात न मानकर वही करना जो तुमने निश्चय किया है।

यह स्पष्ट है कि बच्चेको नैतिक विधान देना वहुत ठीक नहीं है। लेकिन उनकी उपेक्षा करना भी कठिन है। जैसे-जैसे वालक वड़ा होता जाय, उसे नैतिक और सामाजिक विधानोंकी सापेक्षता सिखानी चाहिये। उसे यह भी सिखाना चाहिये कि वह अपने अंदर एक ज्यादा सच्चा और ऊंचा विधान ढूंढ सकता है। लेकिन यहां साव-धानीसे आगे वढ़ना चाहिये और इस सच्चे विधानको ढूंढनेकी कठि-नाईपर जोर देना चाहिये। अधिकतर मनुष्य जो मानवी विधानोंको अस्वीकार करते हैं, जो यह कहते हैं कि अपना जीवन वितानेके लिये उन्हें केवल खुली छूट है, वे अपने प्राणकी सबसे साधारण गति-विधियोंका ही अनुसरण करते हैं, वे प्राणको छद्म रूप देकर-न्यायोचित ठहरानेकी, अपनी आंखोंमें नहीं, दूसरोंकी आंखोंमें कोशिश करते हैं। वे नीतिको केवल इसी कारण लात मारते हैं क्योंकि वह उनके आवेगोंकी पूर्तिमें वाधा डालती है।

तुम्हें नैतिक और सामाजिक विधानोंका मूल्यांकन करनेका अधि-कार तभी प्राप्त होता है जब तुम उनसे परे जा चुके हो। और उन्हें तभी छोड़ा जा सकता है जब उनके स्थानपर कोई और ज्यादा ऊंची चीज हो। यह आसान नहीं है।

हर हालतमें बच्चेको देने लायक सबसे वढ़िया उपहार है उसे अपने-आपको जानना और अपने ऊपर अधिकार पाना सिखाना।

अध्ययनमें मनोयोग

माताजी, यह प्रश्न इसलिये उठता है कि हम अपने स्कूलकी पढ़ाई में कभी-कभी बहुत अधिक अरुचि अनुभव करते हैं, और अपने-आपसे कहते हैं: इस सबका क्या उपयोग है? अतः, किस मनोभावके साथ हमें अध्ययन करना चाहिये ?

मैंने हमेशा कहा है कि अध्ययनका मस्तिष्कपर वही प्रभाव पड़ता है जो व्यायामका मांसपेशियोंपर पड़ता है। उदाहरणार्थ, अपनी मानसिक क्रियाशीलताको सुनम्य बनाने, उसे सशक्त और विस्तारित करने तथा उसे समझनेकी एक ऐसी बारीक शक्ति देनेके लिये जिसे वह तुम्हारे इन व्यायामोंके किये बिना प्राप्त न कर पाती, मानसिक व्यायाम बहुत आवश्यक है। अभी कुछ दिन पहले (निस्संदेह काफी दीर्घकाल पहलेसे ही), मैंने ध्यान दिया है, उदाहरणार्थ, कि यदि दुर्भाग्यवश मुझे दार्शनिक शब्दोंसे भरी कोई चीज तुम्हारे सामने पढ़नी पड़ती है या किंचित् दार्शनिक दृष्टिकोणके बारेमें तुमसे चर्चा करनी पड़ती है तो तुम समझ नहीं पाते। और इसका कारण महज यह है कि तुमने दार्शनिक व्यायाम नहीं किया है। इसका कारण यह नहीं है कि तुम बुद्धिमान् नहीं हो, इसका कारण यह नहीं कि तुम्हारे अंदर समझनेकी योग्यता नहीं; इसका कारण यह है कि तुमने समुचित व्यायाम नहीं किया है। मैं इसी बातको दूसरे ढंगसे कह सकती हूं: तुमने भाषा नहीं सीखी है। परंतु वास्तवमें शब्द वे ही व्यवहृत होते हैं, केवल उनके बीच थोड़ा-सा भिन्न संबंध होता है। वाक्योंका मोड़ कुछ भिन्न होता है, वस्तुओंके प्रति एक प्रकारका भिन्न मनोभाव होता है। परंतु मनोभावके इस अंतरको तुम तबतक नहीं पकड़ सकते जबतक कि तुम तदनुरूप व्यायाम नहीं कर लेते। और इस दृष्टांतको समझना तुम्हारे लिये बहुत आसान है, क्योंकि तुम बहुत

अच्छी तरह जानते हो कि यदि तुम प्रशिक्षित न होओ तो तुम कभी खेल-कूदकी क्रियाएं नहीं कर सकते। यदि तुम्हारे अंदर विशिष्ट क्षमताएं भी हों, यदि तुम स्वाभाविक रूपसे प्रतिभासंपन्न भी होओ, यदि तुम अभ्यास न करो और प्रशिक्षित न होओ, तो तुम उन्हें नहीं कर सकते। ध्यान दो, अपने सभी द्रुत कलाबाजीके व्यायामोंको, यदि पहले ही दिन उन्हें करनेके लिये तुमसे कहा गया होता, तुम नहीं कर सकते थे, वह तुम्हारे लिये एकदम असंभव होता, और इसे तुम भली-भांति जानते हो। यदि कोई व्यक्ति सहज-भावसे तुमसे कहता : "आह! अब इसे करो" -- मान लो, कोई विशेष प्रकारकी कूद, जिसे एक समय कलाबाजी कहते थे — तुम कहोगे : "यह आदमी वास्तवमें नासमझ है, यह तो असंभव है!" हां, यह वही बात है; यदि मैं अमुक किताबें लूं और तुम्हारे सामने पढ़ूं तो तुम उन्हें नहीं समझ सकते क्योंकि तुमने पूर्ण रूपसे दार्शनिक-मानसिक व्यायामोंकी उपेक्षा की है। यह ठीक-ठीक वही बात है कि जिस व्यक्तिने गणित नहीं किया है, उससे यदि किसी गणित-शास्त्रीय तर्कका अनुसरण करनेको कहा जाय तो वह नहीं कर सकेगा...। और इसलिये, उसका तात्पर्य है कि यदि तुम अपनी सत्ताकी गभीर सद्वस्तुको पूरी तरह, सर्वांग रूपसे प्रकट करना चाहते हो तो तुम उसे तभी बहुत अधिक पूर्ण रूपमें, बहुत अधिक विभिन्न रूपमें, बहुत अधिक लाभदायी रूपमें अभिव्यक्त करोगे जब कि तुम्हारी सत्ताके सभी भाग अपने समुचित व्यायामोंके द्वारा इस ढंगसे पूर्णतः विकसित होंगे।

मैं समझती हूं मैं तुम्हें यह बात एक बार पहले समझा चुकी हूं। यदि प्रश्न उस जीवनका होता जो आजतक सच्चा आध्यात्मिक जीवन माना जाता रहा है, अर्थात् समस्त भौतिक क्रियावलीको पूर्णतः त्याग देनेका होता, ताकि परात्पर दिव्य सद्वस्तुके साथ युक्त हुआ जा सके और इस एकत्वमें बने रहा जा सके, जीवन तथा सभी बाहरी अभिव्यक्तिको त्यागकर निर्वाणमें चले जाने, ऐसी

तादात्म्य-स्थितिमें चले जानेका प्रश्न होता जिसे न केवल जगत्में अब और अभिव्यक्त नहीं किया जायगा, बल्कि जो तुम्हें पूरी तरह जगत्से बाहर ले जाती है, तब यह स्पष्ट है कि ये सब व्यायाम, चाहे भौतिक, प्राणिक, ऐंद्रिय अथवा मानसिक हों, बिलकुल निरर्थक हैं, और वे लोग इस सबको महज समयका अपव्यय और एकदम बेकार समझेंगे। परंतु हम लोगोंके लिये, जो लगभग उसके ठीक विपरीत वस्तुको संसिद्ध करना चाहते हैं, अर्थात्, जो परम सद्वस्तु-के साथ अपना तादात्म्य प्राप्त कर लेनेके बाद, उसे जगत्का रूपांतर करनेके लिये जीवनके अंदर अवतरित कराना चाहते हैं, हम यदि इस सद्वस्तुको ऐसे यंत्र दें जो परिमार्जित, क्षमता-संपन्न, सुविकसित और पूर्णतः सचेतन हो तो रूपांतरका कार्य अधिक फलप्रद होगा।

और यही कारण है कि तुमसे, जब कि तुम एक नन्हें बालक हो, यह कहनेके बदले कि तुम वही करो (हंसते हुए) जो कि उन बच्चों-से करनेके लिये कहा गया है, शांत-स्थिर बैठ जाओ और ध्यानमें डूब जाओ या डूब जानेका दिखावा करो; तुमसे यह कहनेके बदले कि तुम्हें सतत ध्यानावस्थामें बने रहना तथा जगत्की सभी चीजोंके प्रति पूर्णतः उदासीन बने रहना चाहिये, तुम्हें केवल एक ही विचार, भागवत कृपाको ग्रहण करनेके लिये अपने-आपको तैयार करनेका विचार रखना चाहिये; यह सब कहनेके बदले तुमसे कहा जाता है: "नहीं, सुविकसित तथा सचेतन व्यक्ति बननेका प्रयास करो, जो वस्तुओंको जानते-समझते हैं तथा जिन्हें स्वस्थ, सबल, चुस्त तथा असाधारण कार्य करनेमें सक्षम शरीर, पर्याप्त संकल्प-शक्ति एवं सामर्थ्यवान्, सुनम्य और सक्रिय मन प्राप्त हो; ये सब चीजें भावी सिद्धिके लिये उपयोगी होंगी।"

बल्कि यही कारण है कि जो लोग, यह बिना जाने कि वे किस विषयमें बातें करते हैं, बाहरी रूपोंके आधारपर विचार करनेके आदी हैं, यह कहते हैं कि इस आश्रममें कोई आध्यात्मिक जीवन नहीं है, यह तो एक पूर्णतः भौतिक जीवन है। बस, यही कारण है! परंतु

यह उनके लिये कहीं अधिक बुरा है, यह हमारे लिये तनिक भी बुरा नहीं है; हमारे लिये, निस्संदेह, यह एक ही बात है।

अच्छा। और प्रश्न नहीं है? किसीको कुछ कहना नहीं है?

(प्रश्न और उत्तर, १९५६; २१ नवंबर; पृ० ३७८) मातृवाणी, खंड ८

पढ़ाईमें रस

मेरे बच्चो, अगर तुम अपने-आपसे कहो: "हम संसारमें भागवत संकल्पको प्रकट करनेके लिये यथासंभव पूर्ण यंत्र बनना चाहते हैं," तो इस यंत्रको पूर्ण बनानेके लिये इसका परिष्कार करना होगा; शिक्षा और प्रशिक्षण देना होगा। इसे एक अनगढ़ पत्थरके टुकड़ेकी तरह नहीं छोड़ा जा सकता। जब तुम पत्थरसे कुछ बनाना चाहो तो उसपर छेनी चलानी पड़ती है, जब तुम एक रूपहीन ढेलेमेंसे सुंदर हीरा बनाना चाहो तो उसे तराशना पड़ता है। हां, तो यहां भी वही बात है। जब तुम अपने शरीर और मस्तिष्कसे भगवान्‌के लिये एक सुंदर यंत्र बनाना चाहते हो तो उसे परिष्कार करना होगा, उसे सूक्ष्म बनाना होगा, जो कमी है उसे पूरा करना और जो है उसे पूर्ण बनाना होगा।

उदाहरणके लिये, तुम अपनी कक्षामें जाते हो। अगर तुम बहुत अच्छी मनोवृत्तिमें नहीं हो तो तुम कहते हो: "आह, कितनी नीरस होगी कक्षा।" मान लो कि कोई ऐसा अध्यापक है जो तुम्हें रिझाना नहीं जानता (हो सकता है कि कोई बहुत अच्छा अध्यापक हो, पर तुम्हें बहलाना न जानता हो, यह हमेशा आसान नहीं होता... ऐसे दिन होते हैं जब विनोद करनेकी इच्छा नहीं होती), तुम

विद्यालयमें नहीं, कहीं और रहना चाहोगे। फिर भी तुम विद्यालय जाते हो, तुम इस तरह जाते हो क्योंकि तुम्हें जाना चाहिये, क्योंकि अगर तुम अपनी सनकके अनुसार चलो तो तुम्हें कभी अपने ऊपर अधिकार न होगा। तुम्हारी सनकें ही तुम्हारे ऊपर अधिकार रखेंगी। तुम अपने-आपको वशमें न रखोगे। तुम अपनी कक्षामें जाते हो लेकिन यह कहनेकी जगह: "हाय, कैसी ऊब आयेगी, कक्षा जरा भी मजेदार न होगी," आदि-आदि, तुम कहो: "अगर जीवनमें एक भी क्षण ऐसा नहीं है, एक भी परिस्थिति ऐसी नहीं है जो प्रगतिका अवसर न देती हो तो आज मैं कौन-सी प्रगति करनेवाला हूं? — मैं अपने छोटे-से व्यक्तित्वको पूरी तरह भगवान्के अर्पण करता हूं। मैं चाहता हूं कि यह उनका अच्छा यंत्र बन सके जिसके द्वारा वे अपने-आपको अभिव्यक्त कर सकें, कि एक दिन मैं रूपांतरके लिये तैयार हो जाऊं। आज मैं क्या करनेवाला हूं? मैं उस कक्षामें जा रहा हूं। यह ऐसा विषय है जिसके लिये मुझे उत्साह नहीं है, लेकिन अगर मैं इस काममें रस लेना नहीं जानता तो शायद इसलिये कि मेरे अंदर कुछ कमी है। क्योंकि मेरे दिमागमें कहींपर कुछ कोषाणुओंकी कमी है। अगर ऐसी बात है तो मैं पता लगानेकी कोशिश करूंगा। मैं अच्छी तरह सुनूंगा। अच्छी तरह ध्यान दूंगा और उससे भी बढ़कर, अपने अंदरसे इस तरहके छिछोरेपनको निकाल बाहर करूंगा। इस बाहरी हल्केपनको निकाल दूंगा जो, जब मैं किसी बातको पकड़ नहीं पाता तो मुझे उबा देता है। मैं क्यों ऊब जाता हूं? — क्योंकि मैं प्रगति नहीं करता।" जब तुम प्रगति नहीं करते तो ऊब जाते हो — बूढ़े और जवान सभी — क्योंकि हम यहां धरतीपर प्रगति करनेके लिये आये हैं। अगर हम हर मिनट अच्छी तरह प्रगति नहीं करते तो यह सचमुच उबानेवाली बात है, नीरस है, यह हमेशा सुखकर नहीं होती, यह अच्छी तो बिलकुल नहीं है। "तो आज मैं यह पता लगा लूंगा कि मैं इस कक्षामें क्या प्रगति कर सकता हूं, कोई

ऐसी चीज है जिसे मैं नहीं जानता, जो मैं सीख सकता हूं।"

अगर तुम सीखना चाहो तो हर क्षण सीख सकते हो। मैं, मैंने तो छोटे बच्चोंकी बकवकसे भी कुछ सीखा है। हर क्षण कुछ हो सकता है। कोई तुमसे कोई ऐसा शब्द कह सकता है, कोई बेवकूफ भी ऐसी बात कह सकता है जो तुम्हें किसी ऐसी चीजकी ओर खोल दे जो तुमसे प्रगति करवाये। और तब, यदि तुम जान सको, जीवन कितना मजेदार हो उठता है! अब तुम उकताते नहीं हो, हर चीज मजेदार हो उठती है। हर चीज अद्‌भुत होती है — क्योंकि तुम हर क्षण सीखते हो, हर कदमपर तुम प्रगति करते हो। उदाहरणके लिये, तुम रास्तेपर हो। वहां यूं ही होनेकी जगह, यह जाने बिना कि तुम क्या कर रहे हो, अगर तुम इधर-उधर देखो और निरीक्षण करो. . .। मुझे याद है जब मुझे इस तरह कुछ खरीदनेके लिये, कुछ सौदा-सुलुफ करनेके लिये सड़कपर जाना पड़ता था — क्यों जाना पड़ता था इसका कोई महत्त्व नहीं है; सचमुच सड़कपर जाना हमेशा मजेदार नहीं होता लेकिन अगर तुम निरी-क्षण करना शुरू करो कि यह आदमी कैसे चलता है, वह कैसे गति करता है, यह प्रकाश उस चीजपर कैसा रंग लाता है, यह छोटा-सा पेड़ वहांके भू-दृश्यको कैसे सुंदर बना देता है, सैकड़ों चीजें कैसे चमकती हैं. . .तो तुम हर क्षण कुछ सीख सकते हो। तुम केवल सीख ही नहीं सकते. . .मुझे याद है, एक बार सड़कपर चलते-चलते मुझे एक प्रकारका प्रबोध मिला था क्योंकि मेरे सामने एक स्त्री चल रही थी और वह सचमुच चलना जानती थी। वह कैसी सुन्दर चाल थी, उसकी गति भव्य थी। मैंने उसे देखा और देखते ही अचानक मैंने यूनानी संस्कृतिका पूरा प्रारंभ देख लिया, किस तरह यह सारे रूप सौंदर्यको अभिव्यक्त करनेके लिये धरतीपर उतरते हैं — केवल इसी कारण कि एक स्त्री चलना जानती थी, समझे? इस तरह सभी चीजें मजेदार बन सकती हैं। तो इस तरह कक्षामें जाकर मूर्खता-भरी चीजें करनेकी जगह (मैं आशा करती हूं,

तुममेंसे कोई ऐसा न करता होगा, मुझे विश्वास है कि वे सब जो यहां मेरी कक्षाके लिये आते हैं वे कभी विद्यालयमें जाकर मूर्खता-भरी चीजें न करेंगे; अपवाद ही नियमका प्रमाण देते हैं: फिर भी मैं जानती हूं कि दुर्भाग्यवश बहुत-से वहां जाकर खोज-खोजकर हर संभव मूर्खता-भरी चीज करते हैं), हां तो, उसकी जगह, यदि तुम कक्षामें प्रगति करनेके लिये, हर रोज एक नयी प्रगति करनेके लिये जा सको — भले वह यह जाननेके लिये ही हो कि तुम्हें अपने अध्यापक क्यों उबा देते हैं — तो यह अद्‌भुत बात होगी — अचानक वह तुम्हें उबानेवाले न रह जायंगे। तुम देखोगे कि वे बहुत मजेदार हैं! बात ऐसी ही है। अगर तुम जीवनको इस तरह देखो तो जीवन एक बहुत अद्‌भुत चीज बन जाता है। उसे मजेदार बनानेका यही तरीका है। धरतीपर जीवन प्रगतिके क्षेत्रके रूपमें बनाया गया है और यदि हम अधिक-से-अधिक प्रगति करें तो धरतीके जीवनसे अधिक-से-अधिक लाभ उठा सकेंगे। और तब तुम प्रसन्न होते हो। जब आदमी जो कर सकता है उसमें अच्छे-से-अच्छा करे तो वह प्रसन्न होता है।

जब आदमी ऊब जाता है तो क्या इसका यह मतलब होता है कि वह प्रगति नहीं कर रहा?

उस समय, हां। निस्संदेह, केवल इतना ही नहीं कि वह प्रगति नहीं करता, बल्कि वह प्रगतिका एक अवसर खो देता है। परिस्थितियोंका एक संयोग था जो तुम्हें नीरस, उबाऊ और मूर्खतापूर्ण लगा और तुम उसके बीचमें थे। तो, यदि तुम उसमें ऊब उठो तो इसका अर्थ है कि स्वयं तुम भी उतने ही उबाऊ हो जितनी कि परिस्थितियां! और यह इस बातका स्पष्ट प्रमाण है कि तुम प्रगतिकी स्थितिमें नहीं हो। इस ऊबकी क्षणिक लहरसे बढ़कर जीवनके हेतुका विरोधी और कोई नहीं है। उस समय तुम अपने अंदर

जरा-सा प्रयत्न करो और अपने-आपसे कहो: "जरा ठहरो, मुझे कौन-सी चीज सीखनी है? यह सब कौन-सी नयी चीजको ला रहे हैं जिसे मुझे सीखना चाहिये? मुझे अपने ऊपर विजय पानेके लिये कौन-सी प्रगति करनी होगी? कौन-सी दुर्बलता है जिसे जीतना होगा? कौन-सी जड़ता है जिसे जीतना होगा?" अगर तुम अपने-आपसे यह कहो तो तुम देखोगे कि अगले ही मिनट तुम ऊबे हुए नहीं हो। तुम्हें तुरत रुचि आने लगेगी और तुम प्रगति करोगे। यह चेतनाकी मामूली बात है।

और तुम जानते ही हो कि अधिकतर लोग ऊब जानेपर एक पग ऊपर उठनेकी जगह एक पग नीचे उतर आते हैं, जैसे थे, उस-से ज्यादा खराब हो जाते हैं, दूसरे जो मूर्खताएं करते हैं उन सब-को करते हैं, हर प्रकारके गंवारूपन, और नीचतामें उतर आते हैं। वे अपने-आपको बहलानेके लिये सब कुछ करते हैं। वे नशा करते हैं, विष लेते हैं, अपना स्वास्थ्य बरबाद करते हैं, दिमाग बर-बाद करते हैं, और अशोभन बातें करते हैं। वे यह सब इसलिये करते हैं क्योंकि वे ऊबे हुए हैं। नीचे जानेकी जगह वे ऊपर उठे होते तो परिस्थितियोंका लाभ उठा पाते। लाभ उठानेकी जगह आदमी जहां था वहांसे जरा नीचे जा गिरता है। जब लोगोंको अपने जीवनमें एक आघात मिलता है, कोई दुर्भाग्य आता है (जिसे लोग दुर्भाग्य कहते हैं, लेकिन कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनपर दुर्भाग्य आता है), तो पहली चीज वे यही करते हैं: वे उसे भुला देनेकी कोशिश करते हैं—मानों यूं भी आदमी काफी जल्दी नहीं भूल जाता! और भूलनेके लिये वे कुछ भी कर बैठते हैं। जब कोई कष्टदायक चीज हो तो वे मन बहलानेकी कोशिश करते हैं, जिसे वे मन बहलाना कहते हैं, यानी, मूर्खतापूर्ण चीजें करते हैं, अर्थात्, चेतनामें नीचे जाते हैं, ऊपर उठनेकी जगह नीचे जाते हैं। क्या तुम्हारे साथ कोई अत्यंत कष्टकर बात हुई है, कोई बहुत ही दुःखद बात? हक्के-बक्के मत बनो, भूलनेकी कोशिश मत करो और

निश्चेतनामें नीचे मत उतरो। तुम्हें अंततक जाना चाहिये और वहां पीछे रहनेवाले प्रकाशको खोजना चाहिये, सत्य, शक्ति और आनंदको देखना चाहिये। इसके लिये तुम्हें बलवान् होना चाहिये, नीचे फिसलनेसे इनकार करना चाहिये। लेकिन मेरे बच्चो, इस चीजको हम जरा बादमें देखेंगे, जब तुम जरा बड़े हो जाओगे।

प्रश्न और उत्तर, १९५३ (१३ मई)

पढ़ाईमें एकाग्रता

(प्रश्नोत्तर)

कभी-कभी हम एकाग्र होनेकी कोशिश करते हैं, पर हो नहीं पाते।

अगर सचमुच तुम एकाग्र नहीं हो पाते तो तुम्हें अपना समय अपने अंदर इसका कारण खोजनेमें लगाना चाहिये! तब यदि अध्यापक तुमसे कोई प्रश्न पूछे तो तुम्हें कह देना चाहिये : "खेद है, मैं सुन नहीं रहा था!"

तुम सीखना नहीं चाहते?

हां।

तब यह कैसे हो सकता है?

परंतु कुछ कक्षाओंमें मैं समझ नहीं पाता।

तब कुछ कक्षाओंमें तुम सीखना नहीं चाहते। तुम साधारण

तौरपर कह सकते हो : "हां, हां, मैं सीखना चाहता हूं," लेकिन अगर कोई सचमुच सीखना चाहे तो एक भी कक्षा ऐसी नहीं होती जहां तुम कुछ न सीख सको। निश्चय ही, चाहे कोई भी कक्षा क्यों न हो, वहां कोई-न-कोई चीज ऐसी जरूर होती है जिसे तुम नहीं जानते, तुम हमेशा सीख सकते हो। तुम चलते-फिरते विश्व-कोश नहीं हो ! अगर तुम एक ही पुस्तकको दोबारा पढ़ो (मेरा ख्याल है कि कुछ कक्षाओंमें यह होता है), और तुम कहो : "ओह ! मैं इस पुस्तकमेंसे गुजर चुका हूं। यह उबानेवाली है," तो यह केवल इसलिये होता है क्योंकि तुम सीखना नहीं चाहते; क्योंकि सचमुच अगर तुम उसी पुस्तकको दोबारा पढ़ रहे हो तो इसका अर्थ है कि पहली बार तुमने उसे ध्यानसे नहीं पढ़ा। और तुमने जो चीज भली-भांति नहीं पढ़ी उसे विशेष ध्यानसे पढ़ना चाहिये। व्याकरणकी पुस्तक भी ! मैं यह नहीं कहती कि व्याकरणकी पुस्तकें बहुत उत्तेजक होती हैं, लेकिन अगर तुम सीखना चाहो तो व्याकरणकी पुस्तक भी मजेदार हो जाती है — व्याकरणके अधिक-से-अधिक दुर्बोध नियम भी ! तुम कल्पना नहीं कर सकते कि जब तुम सचमुच सीखना चाहते हो, तब तुम समझना चाहते हो कि ऐसा क्यों है, सिर्फ यूं ही रट लेने, मुखस्थ कर लेनेकी जगह तुम समझना चाहो : ये शब्द क्या हैं जो यहां रखे गये हैं, किस विचार-के लिये, किस सच्चे ज्ञानके लिये ये रखे गये हैं ? ये क्या कहना चाहते हैं ? — यह सब जानना चाहो तो चीज कितनी अधिक रुचि-कर हो जाती है।...हर एक नियम, चाहे क़ोई-सा क्यों न हो, स्वयं अपने अंदर स्थित किसी चीजके लिये मनुष्यके मनका सूत्र होता है। किसी भी नियमको ले लो। वह यही बतलाता है कि कुछ मस्तिष्कोंने अपनी दृष्टिमें अधिक-से-अधिक स्पष्ट, अधिक-से-अधिक घन या संक्षिप्त रूपमें कोई ऐसी चीज कहनेकी कोशिश की है जिसका अपना अस्तित्व है। अगर तुम शब्दोंके पीछे जाकर इस चीजको ढूंढनेकी कोशिश करो — जो चीज अपने-आपमें अस्तित्व

रखती है, जो शब्दोंके पीछे विद्यमान है—तो चीज कितनी मजेदार हो जाती है! उससे फुरहरी आने लगती है! रोमांच हो उठता है। यह एक जंगलमेंसे गुजरते हुए एक नये देशकी खोज करनेकी तरह है, उत्तरी ध्रुव जाकर छान-बीन करने जैसा है! अगर तुम व्याकरणके नियमोंके साथ ऐसा ही कर सको तो मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं, फिर तुम्हें कोई चीज न उबा सकेगी।

सीखनेकी जगह समझो।

मैं स्वीकार करती हूं कि इसके लिये बहुत अधिक एकाग्रताकी जरूरत है। यह ऐसी एकाग्रताकी मांग करती है जो मनके आवरण-को भेदकर, उसमें छेद करके उस पार निकल सके। और तब यह मेहनत सार्थक होती है...। तुम्हें किसी ठंडी, कठोर, सख्त, बिना लोचकी चीजपर धकेल दिया जाता है। तुम एकाग्र होते हो, एकाग्र होते हो, एकाग्र होते हो, जबतक कि...अचानक तुम दूसरी ओर निकल जाते हो और तुम प्रकाशमें जा निकलते हो और तब समझते हो: "आहा! यह तो अद्‌भुत है! अब मैं समझा।" एक नन्हीं-सी चीज तुम्हें बहुत हर्ष देती है।

तो देखो, विद्यालयमें न उकताना संभव है।

हमारे शिक्षा-केंद्रमें मंद-बुद्धि और बुद्धिमान्, आलसी और मेहनती, सभी विद्यार्थियोंको एक ही लाठीसे हांका जाता है। इसके बारेमें माताजी कहती हैं:

"मेरे बच्चे, इस बातमें मैं तुम्हारे साथ पूरी सहमत हूं। यह बिलकुल ठीक नहीं है। हम इस सबको बदलनेकी कोशिश करेंगे: मेरी समझमें नहीं आता कि हमें एक पुस्तक एक ही वर्षमें क्यों समाप्त करनी चाहिये। यह बिलकुल मनमानी है। तुम्हें कोई अध्याय तबतक नहीं छोड़ना चाहिये जबतक कि वह पूरी तरह समझ-में न आ जाय उसके बाद ही दूसरा अध्याय लेना चाहिये, और इसी तरह अगर कोई अध्याय पूरा हो गया, तो हो गया और नहीं हुआ, तो नहीं हुआ।

सच तो यह है कि अध्यापकको अपना पाठ पाठ्य पुस्तकके आधारपर करानेकी जगह, अपने-आप पाठ तैयार करनेका कष्ट उठाना चाहिये। उसे काफी जानना चाहिये और दिन-प्रतिदिन पाठ तैयार करनेका कष्ट उठाना चाहिये और तब वह किसी विषयका पाठ तभी बंद करेगा जब — मैं यह नहीं कहती कि हर एक समझ लेगा, क्योंकि यह तो असंभव है — कम-से-कम जिन्हें वह कक्षामें रस लेनेवाले समझता है, वे समझ लेंगे। तब नया विषय लिया जाता है। और अगर यह चलता रहे और कोई विशेष विषय एक सालकी जगह दो साल ले या कोई और विषय दो सालकी जगह डेढ़ सालमें ही हो जाय तो इसमें कोई हर्ज नहीं; क्योंकि यह उसकी अपनी रचना है, उसका अपना लिखा हुआ पाठ है। जिसे वह कक्षाकी आवश्यकताके अनुसार लिखता है पढ़ानेके बारेमें मेरी यही धारणा है। अब, इसकी अपनी कठिनाइयां हैं। लेकिन काम करनेका सच्चा तरीका यही है। क्योंकि एक किताब लेकर उसीका अनुसरण करनेसे और विशेषकर ऐसी किताब जो विद्यार्थियोंके लिये जरा भी अनुकूल न हो . . .। मैं नहीं कहती कि एक विशेष पाठ्यक्रम सबके लिये अनुकूल हो सकता है, सबको संतुष्ट करना असंभव है। लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं जो प्रयास करना चाहते हैं; तुम्हें इनका ख्याल करना चाहिये। जो आलसी, निद्रालु और अकर्मण्य हैं उन्हें तो अपने आलस्य, निद्रालुता और अकर्मण्यतामें ही छोड़ दो। अगर वे सारे जीवन सोते रहना चाहते हैं तो सोने दो, जबतक कि कोई चीज उन्हें काफी झकझोरकर जगा न दे। लेकिन श्रेणीमें वह भाग ध्यान देने योग्य है जो सीखना चाहता है, जो लोग सचमुच सीखना चाहते हैं। कक्षा उन्हींके लिये ली जानी चाहिये। तुम देखते नहीं हो कि शिक्षाकी वर्तमान पद्धति एक प्रकारसे समतल बनाना है। हर एकको उसी स्तरपर होना चाहिये। जिन लोगोंके सिर ज्यादा ऊंचे हैं उनके सिर काट दिये जाते हैं और जिनके बहुत छोटे हैं उन्हें नीचेसे धक्का दिया जाता है। लेकिन इससे

कोई लाभ नहीं। तुम्हें उन्हींकी परवाह करनी चाहिये जो ऊपर आते हैं, दूसरे जितना ले सकते हैं, ले लेंगे। और वास्तवमें मैं इस बातकी कोई जरूरत नहीं समझती कि हरएकको एक ही चीज-का ज्ञान हो—क्योंकि यह सामान्य बात नहीं है। लेकिन जो जानना चाहते हैं और जान सकते हैं, जिन्हें काम करना चाहिये, उन्हें काम करनेके पूरे, सब संभव साधन दिये जाने चाहिये, उन्हें हमेशा ऊपर उठाना चाहिये और नया भोजन देना चाहिये। वे भूखे हैं और उन्हें खिलाना चाहिये...। आह! अगर मेरे पास समय होता तो मैं एक कक्षा लेती। इसमें मुझे बहुत रस आयेगा —यह दिखानेमें कि यह कैसे किया जाना चाहिये। लेकिन हम एक ही समयमें हर जगह नहीं हो सकते।

यह लो, मेरे बच्चो, काफी देर हो गयी है। शुभ रात्रि।

(प्रश्न और उत्तर, १९५३)

शिक्षामें परीक्षाका स्थान

(माताजीसे प्रश्न और उनका उत्तर)

हमारे शिक्षा-केंद्रके विद्यार्थियोंको डिप्लोमा और सर्टीफिकेट क्यों नहीं दिये जाते?

लगभग एक शताब्दीसे मानवजाति एक रोगसे पीड़ित है जो अधिकाधिक बढ़ता ही दीख रहा है और आज वह अपनी चरम अवस्थापर आ पहुंचा है; इसे हम उपयोगितावाद कहते हैं। ऐसा

लगता है कि चीजों और मनुष्योंको, परिस्थितियों और कर्मको, सबको, अनन्य रूपसे उसी एक दृष्टिकोणसे विचारा और सराहा जाता है। जिसकी कोई उपयोगिता नहीं उसका कोई मोल नहीं। यह ठीक है कि जो उपयोगी है वह निरुपयोगीसे बेहतर है, लेकिन पहले यह समझ लेना चाहिये कि मनुष्य किसे उपयोगी मानता है; उपयोगी किसके लिये? किसके प्रति? किसलिये?

और, उत्तरोत्तर, वे जातियां जो अपनेको सभ्य समझती हैं, उसी चीजको उपयोगी कहती हैं जो धन ला सके, कमा सके या पैदा कर सके, सबका निर्णय और मूल्यांकन उसी एक आर्थिक दृष्टिकोणसे किया जाता है। मैं इसे ही उपयोगितावाद कहती हूं। यह रोग बहुत ही संक्रामक है क्योंकि बच्चे भी इससे अछूते नहीं रहते।

उस उम्रमें जब कि सुंदरता, भव्यता और पूर्णताके सपने संजोये जाने चाहिये, ऐसे सपने जो शायद सामान्य अर्थोंसे कहीं अधिक उदात्त होते हैं, जो निश्चय ही कुण्ठित सामान्य बुद्धिसे उच्चतर हैं, आजकल बच्चे पैसेके सपने देखते हैं और उसे कमानेके साधनोंके बारेमें चिंतातुर रहते हैं।

इसी तरह, जब वे अपनी पढ़ाईके बारेमें सोचते हैं तो उस सबपर विचार करते हैं जो आगे चलकर उनके लिये उपयोगी हो सके, ताकि जब वे बड़े हों तो बहुत-सा धन कमा सकें।

और परीक्षाओंमें सफल होनेके लिये तैयारी करना उनके लिये बहुत महत्त्वपूर्ण बन गया है, क्योंकि डिप्लोमा, सर्टिफिकेट और उपाधि ही उन्हें उच्च पद प्राप्त करा सकते हैं। इनकी सहायतासे धन भी खूब कमा सकते हैं।

उनके लिये पढ़ाईका न कोई उद्देश्य है, न महत्त्व।

ज्ञानके लिये सीखना, प्रकृति और जीवनके रहस्योंको जाननेके लिये पढ़ना, चेतनाको विकसित करनेके लिये अपने-आपको शिक्षित करना, आत्म-प्रभुत्व पानेके लिये स्वयंको अनुशासित करना, अपनी दुर्बलताओं, अक्षमताओं और अज्ञताओंको अतिक्रम करनेके लिये

पढ़ना, जीवनमें अधिक उच्च, विशाल, उदार और सच्चे उद्देश्यकी ओर बढ़नेके लिये अपने-आपको तैयार करना...यह तो वे सोच ही नहीं सकते, इसे तो वे कपोल कल्पना ही समझते हैं। बस, एक ही चीज महत्त्वपूर्ण है — व्यावहारिक होना, धन कमाना सीखना और उसके लिये अपनेको तैयार करना।

आश्रमका यह शिक्षा-केंद्र उन बच्चोंके लिये उपयुक्त स्थान नहीं जो इस रोगके शिकार हैं। और उनके आगे इस बातको अच्छी तरह प्रमाणित कर देनेके लिये ही हम उन्हें किसी प्रकारकी परीक्षा-के लिये, किसी सरकारी प्रतियोगिताके लिये तैयार नहीं करते, और न ही उन्हें कोई डिप्लोमा और डिग्री देते हैं जो बाहरी दुनियामें उनके काम आ सके।

हम यहां केवल उन्हीं बच्चोंको चाहते हैं जो एक उच्चतर और श्रेष्ठतर जीवनकी अभीप्सा करते हैं, जिनमें ज्ञान और पूर्णताकी प्यास है, जो एक पूर्णतर सच्चे भविष्यकी ओर उत्कटतासे निहारते हैं।

और बाकी सबके लिये दुनिया काफी बड़ी है।

१७.७.१९६०

(कक्षाके मुखियाको)

स्फुट वचन

महत्त्वपूर्ण शिक्षा

"मूलतः एक चीज, एकमात्र चीज जो तुम (अध्यापकों) को अध्य-वसायके साथ करनी चाहिये वह यह है: उन्हें (बालकोंको) अपने-आपको जानना, अपनी निजी नियति, अपना-अपना मार्ग चुनना सिखाओ। अपने-आपको देखना, समझना और संकल्प करना सिखाओ। पहले पृथ्वीपर क्या हुआ था या पृथ्वी कैसे रची गयी

थी इत्यादि सिखानेकी अपेक्षा यह सिखाना अनंतगुना महत्त्वपूर्ण है।"

—माताजी

*

पथ-प्रदर्शक सिद्धांत :

प्र. शिक्षाके नये आदर्शके पथ-प्रदर्शक सिद्धांत कौनसे होने चाहिये ?

उ. **सत्य**
सामंजस्य
स्वतंत्रता

२६.११.६७ —माताजी

*

शिक्षा एक प्रकटन है

"...मनको कोई ऐसी चीज नहीं सिखायी जा सकती जो प्राणीकी खिलती हुई आत्मामें संभाव्य ज्ञानके रूपमें छिपी हुई न हो। इस प्रकार बाहरी मनुष्य जितनी पूर्णता पानेमें समर्थ है वह केवल उसके अंदर स्थित आत्माकी सनातन पूर्णताकी अभिव्यक्ति है। हम भगवान्को जानते और उनके साथ एक हो जाते हैं क्योंकि अपने गुह्य स्वरूपमें हम पहलेसे ही 'वह' हैं। हर प्रकारकी शिक्षा एक प्रकटन है, सारा संभवन एक उन्मीलन है। रहस्य है आत्म-सिद्धि, आत्म-ज्ञान और प्रगतिशील चेतना साधन और प्रक्रिया हैं।"

—श्रीअरविंद
(योग-समन्वय)

*

"सर्वांगीण योग जीवनका त्याग नहीं करता। वह जीवनका रूपांतर करता है, उसे दिव्य बना देता है। वह धर्म नहीं है, वह सभी धर्मोंसे परे है।

शिक्षामें — उसमें तकनीकी शिक्षा भी शामिल है — हम आंखें मूंदकर पाश्चात्य पद्धतिका अनुसरण नहीं करते। हमारे बच्चोंके मनको आधुनिक पद्धतिसे प्रशिक्षण मिल रहा है। लेकिन हम उनमें तादात्म्यद्वारा अंतर्दृष्टि और ज्ञानकी क्षमताको विकसित करनेकी कोशिश करते हैं। हम जो सिखाना चाहते हैं वह केवल एक मानसिक आदर्श नहीं, बल्कि जीवनकी एक नयी धारणा और चेतनाकी सिद्धि है।"

—माताजी

*

बौद्धिक शिक्षण

किस हदतक "बौद्धिक शिक्षण" हमारे मार्गमें सहायता पहुंचा सकता है?

यदि बौद्धिक शिक्षणको अपनी चरम सीमातक ले जाया जाय तो वह मनको असंतोषजनक निष्कर्षतक ले जाता है कि वह 'सत्य' को जाननेमें असमर्थ है और उन लोगोंको जिनकी अभीप्सा सच्ची है यह (बौद्धिक शिक्षण) निश्चल रहनेकी और उस निश्चलतामें उच्चतर स्तरोंकी ओर खुलनेकी आवश्यकताकी ओर ले जाता है जिनसे ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

२७.९.६९

—माताजी

(मातृवाणी, खंड १०, विचार और सूत्र, पृ० २६४)

*

प्रत्येक वस्तु कुछ सिखाती है

यदि व्यक्ति सच्चे दिलसे 'सत्य'के अनुसार जीवन व्यतीत करना चाहता है तो उसे यह जान लेना चाहिये कि प्रत्येक वस्तु उसे कुछ सिखा सकती है। प्रत्येक क्षण उसके सामने प्रगतिकी संभावना रहती है। प्रायः एक बड़ी मूर्खता ही तुम्हारे सामने महान् प्रकाश-को प्रकट कर देती है। पर ऐसा तभी होता है जब व्यक्ति उसे देखना जाने।

२४.१.७० —माताजी

(मातृवाणी, खंड १०, विचार और सूत्र, पृ० ३१३)

*

स्मरण-शक्तिको बढ़ाना

अपनी चेतनाका विस्तार करो और तुम्हारी स्मृति बढ़ेगी।

चेतना यांत्रिक मस्तिष्ककी स्मृतिसे बहुत ज्यादा बड़ी स्मृति है। मैंने यह बात एक दिन, अभी बहुत दिन नहीं हुए, तुम्हें समझायी थी। मैंने तुम्हें बतलाया था कि यांत्रिक मस्तिष्ककी स्मृति भूल सकती है—उलझन डाल सकती है, विकृत कर सकती है — लेकिन अगर तुम अपने अंदर फिरसे उस चेतनाको स्थापित कर सको जिसमें तुम उस समय थे तो तुम्हें ठीक वही अनुभूति होगी। और यही एकमात्र सच्ची स्मृति है। और यह पूरी तरह तुम्हारी चेतनाके विकासपर निर्भर है।

—माताजी

(प्रश्न और उत्तर, १९५३; १६ सितंबर)

जीवन ऐसा ही होगा

जब व्यक्ति बहुत छोटा होता है और जिसे मैं "शुभ-जात" कहती हूं, अर्थात्, वह सचेतन चैत्य पुरुषके साथ जन्म लेता है तो उस बालकके सपनोंमें सदा इस प्रकारकी अभीप्सा रहती है, जो उसकी बाल-चेतनाके लिये एक प्रकारकी महत्त्वाकांक्षा होती है, वह अभीप्सा किसी ऐसी चीजके लिये होती है जो सुंदर-ही-सुंदर है, जहां कुरूपता-का नाम नहीं, जहां, बस, न्याय है, अनीति या अन्यायाचरण नहीं, जहां अपार सौजन्य है और अंतमें जहां सचेतन और सतत रूपसे मिलनेवाली सफलता-ही-सफलता है और जहां नित्य-निरंतर चमत्कार-पर-चमत्कार होते हैं। जब वह छोटा होता है तो चमत्कारोंके ही सपने लेता है, वह चाहता है सब दुष्टता और दुर्जनता मिट जाय, प्रत्येक वस्तु सदा प्रकाशपूर्ण, सुंदर और आनंदमय बनी रहे, वह उन कहानियोंको पसंद करता है जो सुखांत होती हैं। यही चीज है जिसपर तुम्हें निर्भर करना चाहिये। जब शरीर दुःख-दर्द महसूस करता हो तथा अपनी अक्षमता एवं अशक्तता महसूस करता हो तो उसे ऐसी शक्तिके सपने दो जिसके सामर्थ्यकी कोई सीमा नहीं, ऐसे सौंदर्यके जिसमें कोई कुरूपता नहीं और अद्भुत क्षमताओंके सपने दो : बालक ऐसे-ऐसे सपने लेता है कि वह हवामें उड़ सकता है, जहां जरूरत हो वहां उपस्थित हो सकता है, बीमारोंको अच्छा कर सकता है; सचमुच ही बचपनमें व्यक्ति इसी प्रकारके सब सपने लेता है...। सामान्यतः माता-पिता और शिक्षक इन सबपर पानी फेर देते हैं, यह कहकर कि "ओह! वह, वह तो सपना है, वह वास्तविकता नहीं है।" जब कि होना इससे ठीक उलटा चाहिये। बच्चोंको बताना चाहिये : "हां यही चीज है जिसे सिद्ध करनेका तुम्हें प्रयत्न करना चाहिये और यह केवल संभव ही नहीं, बल्कि सुनिश्चित भी है, बशर्ते कि तुम अपने अंदर उस वस्तुके संपर्कमें आ जाओ जिसमें इसे करनेकी

सामर्थ्य है। इसीको तुम्हारे जीवनका पथ-प्रदर्शन करना चाहिये, उसमें व्यवस्था लानी चाहिये और उस सच्ची वास्तविकताकी ओर तुम्हें विकसित करना चाहिये जिसे दुनिया भ्रम समझती है।"

ऐसा ही होना चाहिये, बजाय इसके कि बच्चोंको साधारण, मामूली बच्चे बना डाला जाय, जिनकी समझ सादी और ग्राम्य होती है, जिसमें ऐसी सत्यानासी आदत जमकर बैठ जाती है कि जहां कहीं कुछ अच्छा शुरू हुआ नहीं कि झट यह विचार ऊपर उठ आता है: "ओह! ऐसा ज्यादा दिन नहीं चलेगा!" जब कोई व्यक्ति मधुर और शिष्ट बर्ताव करता है तो यह छाप: "ओह! वह बदल जायेगा!" जब तुम किसी चीजको संपन्न करनेमें समर्थ हो जाते हो तो यह भावना: "ओह! कल मैं इसे इतनी अच्छी तरह न कर सकूंगा।" यह चीज तुम्हारे अंदर सब कुछको नष्ट कर देनेवाले तेजाबकी तरह काम करती है, और यह भविष्यकी संभावनाओंमें आशा, निश्चयता और आत्म-विश्वासको हर लेती है।

बालक जब उत्साहसे भरा हो तो उसपर कभी पानी न फेरो। उससे कभी यह न कहो: "देखो, जीवन इस प्रकारका नहीं है!" बल्कि तुम्हें उसको उत्साहित करना चाहिये, उससे कहना चाहिये: "हां, अभी तो चीजें बेशक उस प्रकारकी नहीं हैं, वे कुरूप प्रतीत होती हैं, परंतु इनके पीछे एक सौंदर्य है जो अपने-आपको प्रकट करनेका प्रयत्न कर रहा है। उसीके लिये प्रेम पैदा करो, उसीको आकर्षित करो। उसीको अपने सपनों और महत्त्वाकांक्षाओंका विषय बनाओ।"

और यदि इस कामको तभी किया जाय जब व्यक्ति बहुत छोटा होता है तो उससे कठिनाई तबकी अपेक्षा बहुत कम होती है जब बादमें उसे इन सब चीजोंको रद्द करना पड़ता है, बुरी शिक्षा-जन्य बुरे परिणामोंको मिटाना होता है और उस प्रकारकी मूढ़ तथा तुच्छ सामान्य बुद्धिसे मुक्त होना होता है जो जीवनसे किसी अच्छी चीजकी आशा नहीं करती, उसे नीरस और दुःखदायी बना डालती है, फलस्वरूप, सब आशाएं और सौंदर्यके सब तथाकथित मिथ्या सपने

खंडित हो जाते हैं। इसके विपरीत तुम्हें बच्चेसे (और यदि तुम गोदके बच्चे न हो तो अपने-आपसे) यह कहना चाहिये : "मुझमें जो कुछ अवास्तविक, असंभव, भ्रमपूर्ण प्रतीत होता है वही वास्तवमें सत्य है और उसे ही मुझे संवर्द्धित करना है। जब मेरे अंदर यह अभीप्सा है कि 'मैं किसी असमर्थताद्वारा सदाके लिये सीमित नहीं रहूंगा और किसी अशुभ भावनाद्वारा हमेशाके लिये रुद्ध नहीं रहूंगा, तो यह भी जरूरी है कि मैं अपने अंदर इस विश्वासको बढ़ाऊं कि यही चीज है जो वस्तुतः सत्य है और इसे ही मुझे जीवन-में पाना है।"

तब शरीरके कोषोंमें विश्वास जाग्रत् हो जाता है। और तुम देखोगे कि स्वयं शरीरके अंदर भी तुम्हें एक प्रत्युत्तर मिलता है। स्वयं शरीर अनुभव करेगा कि यदि आंतरिक संकल्प सहायता करे, दृढ़ता प्रदान करे, दिशा-निर्देश कर ले चले तो हां, सब सीमाएं, सब अक्षमताएं धीरे-धीरे दूर हो जायंगी।

और इस प्रकार, जब पहला अनुभव होता है — कभी-कभी यह तभी हो जाता है जब तुम बहुत छोटे होते हो — आंतरिक हर्ष, आंतरिक सौंदर्य, आंतरिक प्रकाशके साथ जब पहला संपर्क होता है, उस चीजके साथ पहला संपर्क होता है जिसे पानेपर तुम एकाएक महसूस करते हो: "आह! यही तो चीज थी जिसे मैं चाहता था," तो तुम्हें चाहिये कि तुम इसे पुष्ट करो, कभी भूलो नहीं, इसे सामने बनाये रखो, अपने-आपसे कहो: "मैंने इसे जब एक बार महसूस किया है तो मैं इसे दुबारा भी महसूस कर सकता हूं। यह मेरे लिये वास्तविक रह चुका है, चाहे सेकंड-भरके लिये ही रहा हो, पर यही चीज है जिसे मैं अपनेमें वापस लाना चाहता हूं . . .।" और शरीरको इसी ओर आंखें लगाये रखनेके लिये — इसीकी तलाशके लिये, उत्साहित करो, यह विश्वास रखते हुए कि इसके अंदर यह संभावना है और यदि यह इसे पुकारे तो यह वापस आयेगी और जीवनमें फिर प्रकट होगी।

यह ऐसी चीज है जिसे छुटपनमें ही कर लेना चाहिये, वल्कि ऐसी चीज है जिसे हर समय करना चाहिये जव भी तुम्हें अपने अंदर मुड़ने, अपने अंदर संपर्क स्थापित करने, अपने अंदर अवलोकन करनेका अवसर मिले।

और तव तुम देखोगे। जव वालक अपनी सहज प्राकृत अवस्था-में होता है, अर्थात्, जव वह वुरी शिक्षा और वुरे दृष्टांतद्वारा विगड़ा नहीं होता, जव वह स्वस्थ, अपेक्षाकृत संतुलित और सामान्य वाता-वरणमें पैदा होता है और पलता है तो शरीरमें एक सहज-स्वा-भाविक विश्वास होता है कि यदि कोई चीज विगड़ भी गयी तो वह ठीक हो जायगी, इसमें मन या प्राणके हस्तक्षेपकी आवश्यकता नहीं होती। स्वयं शरीरमें यह निश्चय होता है कि वह अच्छा हो जायगा, उसे निश्चित विश्वास होता है कि वीमारी या अस्वस्थता अवश्य दूर हो जायगी। यह तो वातावरणके वुरे संस्कारोंका परिणाम होता है कि शरीर धीरे-धीरे यह सीखने लगता है कि ऐसी भी वीमारियां हैं जो असाध्य हैं, ऐसी भी दुर्घटनाएं हैं जो ठीक नहीं हो सकतीं और यह कि वुढ़ापा भी एक दिन आयगा, और इसी प्रकारकी सव वाहियात वातें जो उसके विश्वास और उसकी आस्था-को हर लेती हैं। पर सामान्य अवस्थामें एकाएक सामान्य वच्चेका शरीर (शरीर, मैं विचारकी वात नहीं कर रही), स्वयं शरीर यह महसूस करता है कि जव कोई चीज विगड़ जायेगी तो निश्चय ही वह फिरसे ठीक भी हो जायेगी। और यदि ऐसा नहीं होता तो इसका अर्थ है कि वह पहले ही विगड़ चुका है। सुस्थता इसे स्वाभाविक अवस्था प्रतीत होती है और जव कोई चीज खलल डालती है और यह वीमार पड़ जाता है तो यह इसे एकदम अस्वाभाविक प्रतीत होता है। अपने सहज-वोधके, स्वाभाविक सहज-वोधके द्वारा इसे निश्चित विश्वास होता है कि सव ठीक हो जायेगा। यह तो केवल विचार-की अशुद्धता ही है जो इसके इस विश्वासको हर लेती है। ज्यों-ज्यों वालक वड़ा होता है विचार अधिकाधिक मिथ्या होता जाता है,

तमाम सामूहिक सुझाव आते हैं और इस प्रकार, थोड़ा-थोड़ा करके शरीर अपनी आस्था खो बैठता है और स्वभावतः अपना आत्म-विश्वास खो देनेके कारण, संतुलनको, जब कोई चीज बिगड़ गयी हो तो, पुनः स्थापित करनेकी अपनी स्वाभाविक क्षमताको भी खो बैठता है।

और यदि तुम्हें, जब तुम बहुत छोटे हो तभीसे, एकदम बचपनसे, धोखा देनेवाली, अवसाद लानेवाली बल्कि, सड़ांध पैदा करनेवाली यां यूं कहूं, नष्ट-भ्रष्ट कर देनेवाली चीजें सिखायी जायें — तो बेचारा शरीर अपनी पूरी कोशिशोंके बावजूद बिगड़ चुका होता है, स्वास्थ्य खो चुका होता है और अपनी आंतरिक सामर्थ्य, अपनी आंतरिक शक्ति और प्रतिक्रियाकी क्षमताका भी इसे बोध नहीं रहता।

पर यदि तुम ध्यान रखो कि यह बिगड़ने न पाये तो शरीरमें अपने ही अंदर 'विजय' का विश्वास होता है। विचारके गलत उपयोगसे और उसका शरीरपर जो प्रभाव पड़ता है वही उससे विजयकी निश्चितिको छीन लेता है। तो, करने लायक पहली चीज है इस विश्वासको नष्ट करनेकी जगह पोषण एवं संवर्धन करना, और इसके साथ फिर, अभीप्साके प्रयत्नकी जरूरत नहीं रहती, फिर तो, बस, यह विजयमें इसी आंतरिक विश्वासका बिलकुल सहज-रूपमें प्रस्फुटित होना या उन्मीलित होना होता है।

शरीर अपने अंदर दिव्य होनेका भाव लिये रहता है।

तो यदि तुमने इसे खो दिया है तो इसे अपने अंदर पुनः प्राप्त करनेकी कोशिश करो।

जब कोई बालक तुम्हें ऐसा सुन्दर सपना सुनाये जिसमें उसके पास बहुत सारी शक्तियां थीं और सब कुछ बहुत सुन्दर था तो ध्यान रखो, उससे ऐसा कभी न कहो: "ओह! जीवन इस प्रकारका नहीं है," क्योंकि ऐसा करना गलत होगा। इसके विपरीत, उससे कहो : "जीवन ऐसा ही होना चाहिये और इसी प्रकारका होगा।"

(प्रश्न और उत्तर, १९५७; ३१ जुलाई)